भारतीय ज्ञानपरम्परा आधारित

संस्कृति बोधमाला ८

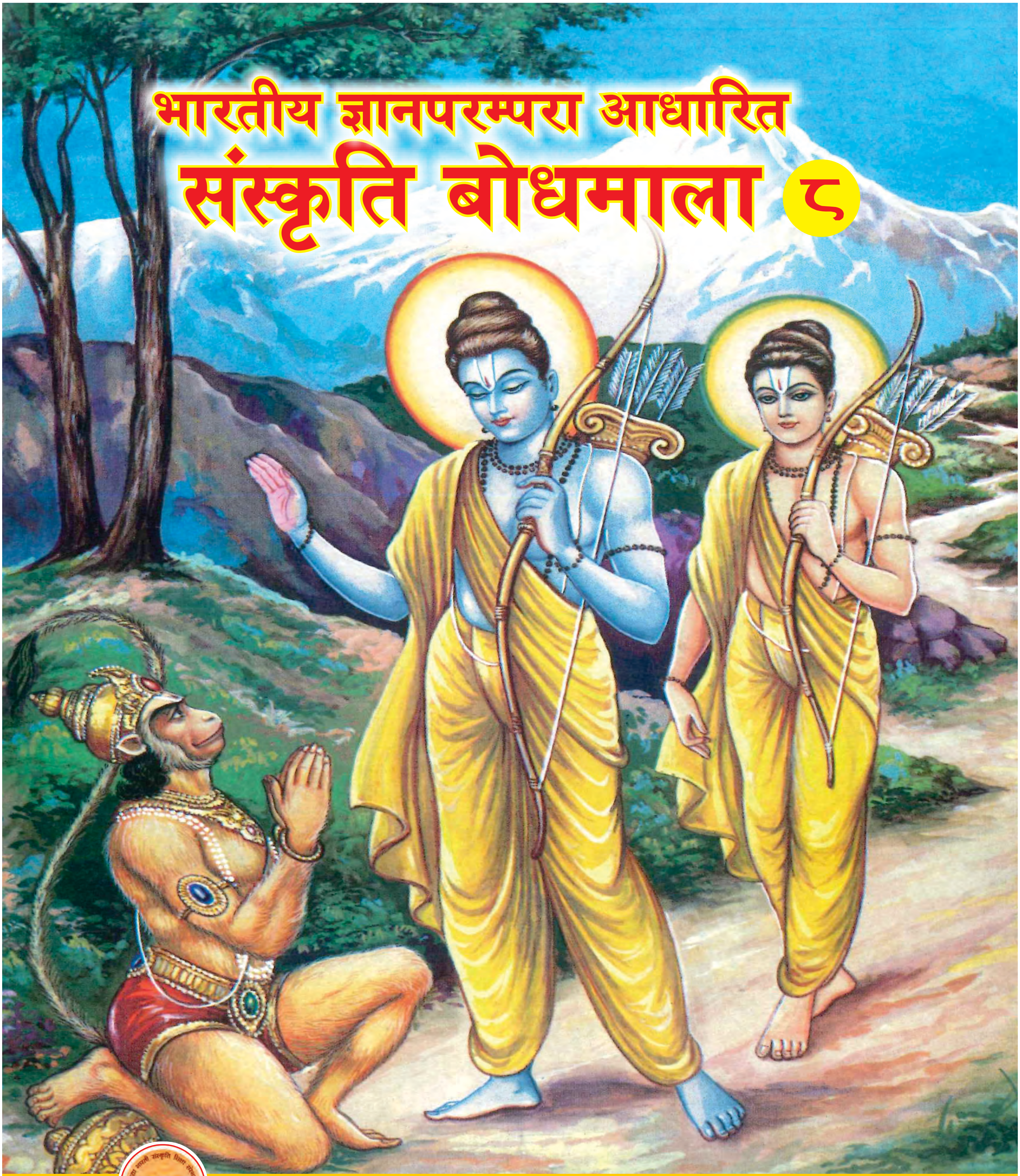

प्रकाशक : विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र

विद्या भारती
अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान
हमारा लक्ष्य
इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा–प्रणाली का विकास करना है जिसके द्वारा
ऐसी युवा–पीढ़ी का निर्माण हो सके जो हिन्दुत्वनिष्ठ एवं राष्ट्रभक्ति से ओत–प्रोत हो, शारीरिक,
प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो तथा जो जीवन की
वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सके और उसका जीवन ग्रामों
वनों, गिरिकन्दराओं एवं झुग्गी–झोपड़ियों में निवास
करने वाले दीन–दुःखी अभावग्रस्त अपने
बान्धवों को सामाजिक कुरीतियों,
शोषण एवं अन्याय से मुक्त
कराकर राष्ट्र जीवन को
समरस, सुसम्पन्न
एवं सुसंस्कृत
बनाने के लिए
समर्पित
हो।

ॐ

मंगलाचरण

संकट विकट न मानी हार, सेतु बाँध कर सागर पार।
किया दुष्ट रावण संहार, मारुति वत्सल की जयकार।।

राष्ट्र गीत - वन्दे मातरम्

प्रस्तुत राष्ट्रगीत भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (चटर्जी) द्वारा रचित 'आनंदमठ' पुस्तक से उद्धृत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यही गीत क्रांतिकारियों का प्रेरणा मंत्र रहा है।

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्,
शस्य श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम् ॥१॥
शुभ्र-ज्योत्स्नां-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुर-भाषिणीम्,
सुखदां, वरदां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥२॥
कोटि-कोटि-कंठ कल-कल-निनाद-कराले,
कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खर-करवाले,
अबला केनो माँ एतो बले,
बहुबल-धारिणीं, नमामि तारिणीम्,
रिपुदल-वारिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥३॥
तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे, बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे। वन्दे मातरम् ॥४॥
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणीम्,
कमला कमल-दल-विहारिणीम्,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥५॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्,
धरणीं भरणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥६॥

भारत माता की जय।

प्रकाशकीय

परमोच्च सत्य का सन्धान, आख्यान और व्यवहार संस्कृति है। आसेतुहिमाचल, इस भूमि पर अपनी सारस्वत साधना से इस सत्य का साक्षात् दर्शन कर हमारे पूर्वज मनीषियों ने ऋषि पद प्राप्त किया। वेद एवं उपनिषद् आदि वाङ्मय के रूप में उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति की। इस पृथ्वीतल एवं समस्त ब्रह्माण्ड की प्राकृतिक शक्तियों की देवरूप में मनोरम स्तुति तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों का, विविध आख्यान-उपाख्यानों के माध्यम से, तात्त्विक कथन आदि ने इसके स्वरूप को गढ़ा। इनके आधार पर जिन जीवनमूल्यों (दर्शन), जीवन व्यवहार (धर्म) का विकास हुआ उसे भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित किया गया। 'सत्य संकल्प प्रभु' राम, गीता के आख्याता श्रीकृष्ण एवं कण-कण में रमे शिवशंकर 'संस्कृति पुरुष' बने।

सत्य शाश्वत है, कालजयी है, इसलिए उसका प्रवाह चिरन्तन होता है। सत्य को वहन करने वाली संस्कृति की गति कभी मृदु, मंद, मंथर उर्मियों से युक्त होती है तो आवश्यकता होने पर इसमें उत्ताल तरंगें भी उठती हैं। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने इसे विविधावर्णी बनाया। श्रीमद् शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृत्ति तत्त्ववेत्ताओं के दार्शनिक सूत्रों के साथ उस तत्त्व के रसरूप (रसो वै सः) के प्रति भक्तिपरक स्तोत्रों ने इसमें माधुर्य का संयोग किया। पुराण साहित्य तो भक्ति का अगाध समुद्र ही है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता- इस प्रस्थानत्रयी में श्रीमद्भागवत जुड़कर प्रस्थान चतुष्टय हुआ, जिसने मस्तिक और हृदय-तत्त्वचिन्तन और भक्ति की समन्वित धारा को गति प्रदान की। पूरे इतिहास फलक पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि लम्बे संघर्षकाल में- प्रारंभ से अन्त तक- इन्हीं ग्रन्थों में ग्रथित तत्त्वदर्शन का युगीन, समकालीन व्याख्यान हमें प्रेरणा देता रहा है।

देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भारतभूमि, राष्ट्र का भारतमाता के रूप में चिरंतन दर्शन एक ओर, तो दूसरी ओर 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर सम्पूर्ण जगती के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव, भारतीय संस्कृति का मूल है। 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' (महाभारत), 'सबार ऊपर मानुष सत्य, ता ऊपर किछु नाहीं (चण्डीदास) कहकर मनुष्य मात्र को इस संस्कृति ने अपने केन्द्र में रखा तो जीवमात्र और उससे भी आगे बढ़कर चेतन के साथ जड़ को भी जोड़कर यह संस्कृति अनन्त विस्तार पाती है। छोटे से छोटा (अणोरणीयान्) और बड़े से बड़ा (महतो महीयान्), सब कुछ को यह अपनी परिधि में समाहित कर लेती है। आध्यात्मिकता, सांसारिकता, शाश्वत धर्म, सामयिक कर्त्तव्य, सुरज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वय, पुरुषार्थ चतुष्टय, व्यवहार के स्तर पर आन्तरिक शुचिता और बाह्यशुद्धि आदि विचार इसकी श्रेष्ठता है। इस सबका आख्यान करने वाले रामायण, महाभारत हमारे 'संस्कृति ग्रन्थ' हैं।

संस्कृति का यह प्रवाह अबाध व निरन्तर बना रहे, इसकी आवश्यकता आज बड़ी तीव्रता से अनुभव में आती है। यह नई पीढ़ी तक पहुँचे, नई पीढ़ी को इसका सम्यक, सुष्ठु और सर्वाङ्ग बोध हो, इस उद्देश्य से विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान इस संस्कृति बोधमाला का प्रकाशन कर रहा है। भावीपीढ़ी 'संस्कृति दूत' बनकर मानवता की सेवा कर सकें, दिशा दे सकें तो हम कृतकार्य होंगे।

संस्कृति बोधमाला को तैयार करने के लिए विद्या भारती के अनेक कार्यकर्ताओं ने सब प्रकार का अनवरत परिश्रम किया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इसमें उपयोग किए गए चित्रों के रचनाकार निश्चय ही हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में इसमें सहयोग मिला, उनका विनम्र आभार...

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**हमारी भारतमाता** चारमठ, सप्तपर्वत, पर्व–त्योहार, सांस्कृतिक मेले एवं पर्व, नगरों के नाम।	५
२.	**हमारा भारत राष्ट्र** भारतीय समाज व्यवस्था, अखण्ड भारत, एकात्मतास्तोत्रम्, हमारे महापुरुष।	१२
३.	**हमारी भारतीय संस्कृति** संस्कारों की पावन परम्परा, भारतीय संस्कृति में ॐ का महत्व, धर्म, हमारी मान्यताओं के वैज्ञानिक आधार ।	१९
४.	**हमारी परिवार व्यवस्था** भारतीय भाषाएँ, स्वदेशी से स्वतंत्रता, देश उठेगा, सन्तवाणी।	२३
५.	**हमारी ज्ञान परम्परा** हमारी दृष्टि समग्रता की है, वेदांग, संगठन मंत्र, श्रीरामचरितमानस प्रसंग, प्रकृति के प्रति मातृभाव, श्रीमद्भगवद्गीता, प्राचीन गुरुकुल शिक्षा, एकात्ममानव दर्शन।	२७
६.	**हमारी वैज्ञानिक परम्परा** भारतीय कालगणना, हमारा संकल्प, भारतीय ज्योतिष, भारत की वैज्ञानिक दृष्टि, प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक, नवीन भारतीय वैज्ञानिक।	३५
७.	**हमारा गौरवशाली अतीत** हमारे वीर योद्धा, प्रेरक बालवीर, वन्दे मातरम्।	४१
८.	**हमारी संस्कृति का विश्व संचार** भारत की विश्व को देन।	४५

---

१. हमारी भारतमाता

जन्मभूमिरियं कर्मभूमिरियं वन्दनीया सुरैः भारतमातरम्।
अर्पयामो वयं प्राणपुष्पाञ्जलि जन्मजन्मान्तरे वन्दयामोवयम्।।

हे जन्मभूमि भारत हे कर्मभूमि भारत, हे वन्दनीय भारत अभिनन्दनीय भारत।
जीवन सुमन चढ़ाकर आराधना करेंगे, तेरी जनम जनम भर हम वन्दना करेंगे।।

चारमठ

भारतमाता के पुत्रों ने सदैव भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकात्मता, अखण्डता, आध्यात्मिकता तथा सनातन सत्ता के प्रति आदर भाव के प्रकटीकरण के प्रयत्न किए हैं। यही सन्देश देने हेतु आदिशंकराचार्य ने देश की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की थी। इनमें आदिशंकराचार्य से प्रचलित गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन आज भी होता है। इन चार शांकर मठों का वर्णन इस प्रकार है -

शृंगेरीमठ

भारत के दक्षिण में कर्नाटक राज्य के चिकमंगलूर जिले में यह मठ तुंग नदी के तट पर स्थित है। यह यजुर्वेदीय परम्परा का मठ है, जिसका महावाक्य ''अहं ब्रह्मास्मि'' है। इसके प्रथम मठाधीश आद्यशंकराचार्य से शास्त्रार्थ में पराजित होने के बाद इनके शिष्य बन गए सुरेश्वराचार्य थे, जिनका पूर्वाश्रम में नाम मण्डन मिश्र था।

गोवर्धनमठ

भारत के पूर्व में ओडिशा राज्य के पुरी नगर में स्थित ऋग्वेदीय परम्परा के इस मठ का महावाक्य ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' है। यहाँ के देवता जगन्नाथ और देवी विमला हैं। इस मठ के प्रथम मठाधीश आद्यशंकराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपाद थे। इसी मठ के १४५वें शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्णतीर्थ जी वर्तमान वैदिक गणित के महान संशोधक हुए हैं।

शारदामठ

भारत के पश्चिमी राज्य गुजरात में द्वारका धाम में स्थित है। सामवेदीय परम्परा के इस मठ का महावाक्य ''तत्त्वमसि (तत्+त्वम्+असि)'' है। इसके प्रथम मठाधीश हस्तामलक (पृथ्वीधर) थे। ये आद्यशंकराचार्य के चार शिष्यों में से एक थे।

ज्योतिर्मठ

उत्तरांचल के बदरीनाथ धाम में स्थित। अथर्ववेदीय परम्परा के इस मठ का महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म' है। ज्योतिर्मठ के प्रथम मठाधीश आचार्य तोटक थे।

अब बताइए -

प्रश्न- शृंगेरी मठ के प्रथम मठाधीश कौन थे?

उत्तर- सुरेश्वराचार्य।

प्रश्न- शृंगेरी मठ किस वेद की परम्परा का है?

उत्तर- यजुर्वेद।

प्रश्न- गोवर्धन मठ किस राज्य में है?

उत्तर- ओडिशा

प्रश्न- गोवर्धन मठ का महावाक्य क्या है?

उत्तर- प्रज्ञानं ब्रह्म।

प्रश्न- शारदा मठ किस राज्य में है?

उत्तर- गुजरात।

प्रश्न- शारदा मठ का महावाक्य क्या है?

उत्तर- तत्त्वमसि।

प्रश्न- ज्योतिर्मठ किस वेद की परम्परा का है?

उत्तर- अथर्ववेद।

प्रश्न- ज्योतिर्मठ का महावाक्य क्या है?

उत्तर- अयमात्मा ब्रह्म।

शारदा मठ

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

१. गोवर्धन मठ के १४५वें शंकराचार्य ---------------- थे। **(स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थ)**

२. गोवर्धन मठ के प्रथम मठाधीश --------------- थे। **(पद्मपाद)**

३. शारदा मठ ------------- परम्परा का है। **(सामवेदीय)**

४. ज्योतिर्मठ के प्रथम मठाधीश ---------- थे। **(आचार्य तोटक)**

५. शृंगेरी मठ के प्रथम मठाधीश सुरेश्वराचार्य का पूर्व नाम -------- था। **(मण्डन मिश्र)**

प्रश्न- सही जोड़ी बनाओ।

ज्योतिर्मठ	-	कर्नाटक
शारदामठ	-	गुजरात
गोवर्धन मठ	-	उत्तराखण्ड
शृंगेरी मठ	-	ओडिशा

सोचिए, क्या आपने इनमें से किसी शांकर मठ के दर्शन किए हैं? नहीं, तो अवसर मिलते ही अवश्य जाइए।

सप्तपर्वत

भारत माँ के पुण्यपयोधर प्राण पीयूष पिलाते हैं।
ये पर्वत इतने सुन्दर हैं सुर भी महिमा गाते हैं।।

रैवतक पर्वत- पश्चिमी प्रान्त गुजरात में स्थित, वर्तमान में गिरनार नाम से प्रसिद्ध पर्वत ही प्राचीन रैवतक पर्वत है यह जूनागढ़ के निकट है। श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम की पत्नी रेवती के पिता राजा रैवतक के नाम से ही इसे यह नाम मिला। अर्जुन ने श्रीकृष्ण की इच्छा से सुभद्रा का हरण उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह रोकने हेतु, यहीं से किया था। यही सुभद्रा वीर अभिमन्यु की माता थी। गुजरात के सौराष्ट्र में स्थित यह पर्वत कई वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध एवं नाथ मतावलम्बियों के प्रसिद्ध तीर्थों से सुशोभित है। प्रसिद्ध अम्बामाता मन्दिर भी यहीं है। भक्त नरसिंह (नरसी) मेहता की प्रसिद्ध कथा भी इसी स्थान से जुड़ी है।

यह क्षेत्र गायों और सिंहों की विलक्षण उत्तम 'गिर' प्रजाति के लिए प्रसिद्ध है। रैवतक की परिक्रमा प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को हजारों लोग श्रद्धापूर्वक करते हैं।

विन्ध्याचल – उत्तरी और दक्षिणी भारत को जोड़ने वाला अत्यन्त विस्तृत पर्वत विन्ध्याचल है। महर्षि अगस्त्य द्वारा उत्तरी-दक्षिणी भारत के मध्य आवागमन सुलभ बनाने के लिए विन्ध्याचल को नतमस्तक करने की पुराण कथा प्रसिद्ध है। शोण और नर्मदा नदियाँ इसी की गोद से प्रवाहित होती हैं। अमरकण्टक और चित्रकूट जैसे विख्यात तीर्थ इसे महिमामण्डित करते हैं। विन्ध्य का ही अमरकण्टक वाला भाग 'मैकल' कहलाता है। चम्बल और बेतवा जैसी बड़ी नदियाँ भी विन्ध्य की ही देन हैं। प्रसिद्ध शक्तिपीठ विन्ध्यवासिनी इसी पर्वत पर ही स्थित है। प्रसिद्ध कैमूर पर्वत श्रेणियाँ इसी का भाग हैं। इसे दक्षिण का द्वार भी कहा जाता है। पर्वतों की रानी कही जाने वाली प्रसिद्ध पर्यटन स्थली पचमढ़ी इसी की गोद में बसी है।

अरावली – राजस्थान में लगभग चार सौ मील विस्तृत क्षेत्र में अरावली गुजरात से दिल्ली तक फैला है। प्रायः वनस्पति रहित, रेतीली और पथरीली मिट्टी से बना अरावली शौर्यमय इतिहास से गर्वित है। दिल्ली में राष्ट्रपति भवन तथा संसद भवन (अब संविधान सदन) इसी की रायसीना पहाड़ी पर है। चित्तौड़गढ़, रणथम्भौर, कुम्भलगढ़, बून्दी, अजयमेरू, आमेर, जोधपुर व जैसलमेर आदि दुर्ग अरावली की शौर्य संस्कृति का परिचय देते हैं। यह अर्बुदाचल (माउण्ट आबू) जैसे तीर्थ से सुशोभित है तथा स्वराज्य हेतु सर्वस्व दान करने वाले भामाशाह, महाराणा प्रताप और भक्तिमती मीरा की गाथाओं से गुंजित है। प्रसिद्ध हल्दीघाटी के संग्राम का साक्षी है अरावली।

क्या आप अपने प्रान्त के ऐसे और पर्वतों के नाम जानते हैं जो धार्मिक, ऐतिहासिक या विशेष कारणों से प्रसिद्ध हैं? यदि हाँ, तो उन कारणों का पता लगाकर मित्रों से चर्चा कीजिए।

पर्व-त्योहार

संस्कृति के सुरम्य उपवन के सुमन स्वरूप पर्व त्योहार।
सारा जग सम्मोहित जिनसे शुचि सन्दर्भ सहित व्यवहार॥

भारत में अनेक त्योहार मनाए जाते हैं ये त्योहार विविध सन्दर्भों से सम्बन्धित हैं इनमें से कुछ महान पुरुषों के जन्मदिन, कुछ सामाजिक समरसता के पर्व और कुछ जागृति पर्व भी हैं। हमारे पर्व-त्योहार उल्लास और उमंग के साथ तो मनाए ही जाते हैं, इन पर्वों में हमारी संस्कृति, इतिहास और परम्परा भी निहित होती है। अपना देश पर्वों, उत्सवों और त्योहारों का देश है।

किस माह में कौन-कौन से प्रमुख उत्सव, त्योहार, जयन्तियाँ आते हैं उनका उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है –

१. **चैत्र** – वर्ष प्रतिपदा (नव संवत्) उगादि, गुड़ी पड़वा, वासन्तिक नवरात्र, रामनवमी, हनुमान जयन्ती, गणगौर, महावीर जयन्ती।

वर्ष प्रतिपदा – चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, नव वर्ष आरम्भ, भारतीय काल गणना का प्रथम दिवस, स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना, भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक, शकों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर विक्रमादित्य द्वारा नव संवत्सर का प्रारम्भ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ॰ केशव बलिराम हेडगेवार का जन्म दिवस, भगवान झूलेलाल का प्राकट्य दिवस है। यही ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि आरम्भ की तिथि भी है।

२. **वैशाख** – परशुराम जयन्ती, अक्षय तृतीया, वैशाखी (मेष संक्रान्ति), बुद्ध पूर्णिमा, महावीर जयन्ती, जानकी नवमी।

३. **ज्येष्ठ** – हिन्दू साम्राज्य दिवस, वट सावित्री, गंगा दशहरा, निर्जला एकादशी।

४. **आषाढ़** – भगवान जगन्नाथ रथयात्रा, व्यास पूर्णिमा या श्री गुरु पूर्णिमा।

व्यास पूर्णिमा– आषाढ़ पूर्णिमा भगवान वेद व्यास के पूजन का दिन है, जिन्होंने चारों वेदों का संकलन कर विश्व को ज्ञान दिया। इसको गुरु पूर्णिमा भी कहते हैं और व्यास रूप गुरु की पूजा करते हैं। गुरु हमारे सम्पूर्ण जीवन का निर्माता है। व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक जीवन में गुरु का बहुत महत्त्व है। इस दिन सब अपने गुरु के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं।

५. **श्रावण** – हरियाली तीज, नागपंचमी, रक्षाबन्धन।

रक्षाबंधन – श्रावणी पूर्णिमा को आयोजित इस त्योहार द्वारा समाज से वर्ग, जाति, वंश आदि भेदों को मिटाकर समानता, समरसतायुक्त समाज का स्वरूप खड़ा करना रक्षाबन्धन उत्सव का सन्देश है। इस दिन सेवा बस्तियों में जाकर उनमें रहने वाले बन्धु-भगिनियों को राखी के स्नेहबन्धन में बाँधकर समाज की राष्ट्रीय मूल धारा से जुड़े होने का भाव जगाया जाता है। भाइयों को बहनें राखी बाँधकर रक्षा का वचन लेती हैं। यह सारे समाज के परस्पर रक्षा के वचन का उत्सव है। शचि-इन्द्र एवं लक्ष्मी-राजा बलि तथा कृष्ण-द्रौपदी के रक्षाबन्धन की पुराण कथाएँ प्रचलित हैं।

६. **भाद्रपद** – श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, हरतालिका तीज, गणेश चतुर्थी, ऋषि पञ्चमी, राधाष्टमी, अनन्त चतुर्दशी।

७. **आश्विन**– शारदीय नवरात्र, विजयादशमी, शरद पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकि जयन्ती।

विजयादशमी – आश्विन शुक्ल दशमी को शारदीय नवरात्र की सम्पूर्णता पर विजयादशमी, शक्ति उपासना के पवित्र पर्व के रूप में मनाया जाता है। यह राष्ट्र को बलशाली बनाने के भाव से शस्त्र पूजन का उत्सव और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्थापना दिवस है।

८. **कार्तिक** – करवाचौथ (कर्क-चतुर्थी), अहोई अष्टमी, धनतेरस (धन्वन्तरि जयन्ती), दीपावली, गोवर्धन पूजा, भैया दूज, सूर्य षष्ठी (छठ पूजा), देव उत्थान (हरि प्रबोधिनी) एकादशी, गंगा स्नान पूर्णिमा, गुरुनानक प्रकाशोत्सव।

९. **मार्गशीर्ष** – दत्तात्रेय जयन्ती, गीता जयन्ती, गुरु रविदास जयन्ती।

१०. **पौष** – पार्श्वनाथ जयन्ती, गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती।

११. **माघ** – संकष्टी चतुर्थी, मकर संक्रान्ति, वसन्त पंचमी, वीर हकीकत बलिदान दिवस, पोंगल, बिहू।

मकर संक्रान्ति – यह उत्सव सौर मास गणना के आधार पर मनाया जाता है। सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है तब उत्तरायन प्रारम्भ होता है। सूर्य की किरणों में प्रखरता आने लगती है। यह अन्धकार से प्रकाश की ओर, अकर्मण्यता से कर्मठता की ओर सं-क्रान्ति करने का दिन है। इस दिन हम तिल, गुड़, खिचड़ी का भोजन, खिचड़ी का सामूहिक भोग लगा कर सामाजिक भेद-भाव तथा अस्पृश्यता आदि कुरीतियों को दूर कर समरसता स्थापित करने का संकल्प लेते हैं। मिठासयुक्त स्नेह के प्रतीक तिल-गुड़ बाँटकर समाज को एकात्म करना, यही इस पर्व का सन्देश है।

१२. **फाल्गुन** – महाशिवरात्रि एवं होली।

सांस्कृतिक मेले एवं पर्व

समाज की अवधारणा समुदाय में पारस्परिक सम्पर्क और सम्मेलन पर आधारित है। भारतीय समाज सहज रूप से उत्सव प्रिय है। हमारी परम्परा में विभिन्न व्रत, पर्व, उत्सव, मेले आदि सामूहिक संस्कार प्रक्रिया के अंग हैं।

भारतीय समाज के प्रमुख मेले हैं –

(१) **कुम्भ मेले** – प्रति बारह वर्ष के अन्तराल पर भारत के प्रमुख चार तीर्थ स्थानों पर कुम्भ मेले लगते हैं। ये भारत के ही नहीं, विश्व के सबसे बड़े समागम होते हैं। प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक, इन चार स्थानों पर लगभग एक माह की अवधि के लिए लाखों की संख्या में साधु-संन्यासी, भक्त, विविध पंथ और उपासना पद्धतियों के अनुयायी एकत्र होते हैं। कुम्भ आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पारस्परिक विमर्श और साधनामय सहजीवन का अनुपम उदाहरण हैं। आश्चर्यजनक तथ्य है कि ये मेले बिना किसी आमंत्रण के खगोलीय ग्रहों (बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा) की गति के आधार पर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वनांचलों और गिरि-कन्दराओं के वासियों के निर्धारित तिथियों पर एकत्र होने की युगों पुरानी परम्परा है। विश्वभर से लोग इन कुम्भ मेलों में सम्मिलित होकर भारतीय संस्कृति और हिन्दुत्व के विराट स्वरूप का दर्शन करते-कराते हैं। कुम्भ अनेक पौराणिक प्रसंगों से जुड़ा है। मूलतः यह वैविध्यपूर्ण हिन्दू संस्कृति की एकात्मता का महान पर्व है।

(२) **गंगासागर मेला** – गंगासागर मेला, प्रतिवर्ष सूर्य के मकर राशि में प्रवेश के समय मकर संक्रान्ति पर गंगा और समुद्र के मिलनस्थल पर लगता है। यह मेला स्थल पश्चिम बंगाल के कोलकाता महानगर से १५० किलोमीटर दक्षिण में लगभग ३०० वर्गकिलोमीटर क्षेत्रफल वाले द्वीप पर लगता है। यह मेला कपिल मुनि के शाप से भस्म राजा सगर के ६० हजार पुत्रों की मुक्ति हेतु भगीरथ के अथक तप और प्रयत्न की कथा से जुड़ा है। भगीरथ प्रयत्नों से अवतरित हुई गंगा के स्पर्श से उन राजपुत्रों की मुक्ति हुई थी। उक्ति है, **'सारे तीरथ बार-बार, गंगा सागर एक बार।'**

(३) **पुष्कर तीर्थ मेला**– राजस्थान के प्राचीन नगर अजेयमेरु (अजमेर) से ग्यारह किलोमीटर दूर पुष्कर है। यह समस्त तीर्थों का गुरु माना जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर लगने वाला विशाल मेला लाखों भारतीयों की आस्था और असंख्य विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र है। सांस्कृतिक महत्त्व के साथ-साथ यहाँ लगने वाला पशु मेला इसे व्यापारिक महत्त्व भी प्रदान करता है।

(४) **सोनपुर मेला** – बिहार के सोनपुर नामक स्थान पर प्रतिवर्ष कार्तिक माह की पूर्णिमा को लगने वाला 'सोनपुर मेला' अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। इसे हरिहर क्षेत्र मेला भी कहते हैं। गण्डक नदी के तट पर आयोजित इस मेले की स्थानीय समाज में 'छत्तर मेले' के नाम से भी प्रसिद्धि है। यहाँ देश का सबसे बड़ा पशु मेला भी लगता है।

सूर्य षष्ठी पर्व

(५) **सूर्य षष्ठी पर्व** – सूर्योपासना का यह महापर्व प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल षष्ठी को मनाया जाता है। विशेषतः बिहार, झारखण्ड, पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं नेपाल में मनाया जाने वाला यह लोकपर्व है। यह किसी पूजा पद्धति या मूर्तिपूजा से बँधा न होकर मानव समाज का प्रकृति के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करने का पर्व है जिसे नदी या सरोवर किनारे सूर्य व उनकी पत्नी उषा की आराधना के रूप में मनाया जाता है।

(६) **रथयात्रा** – चार धामों में प्रतिष्ठित जगन्नाथधाम पूर्वी भारत के ओडिशा प्रान्त में स्थित है। इसे श्री क्षेत्र, शंख क्षेत्र एवं पुरुषोत्तम पुरी के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ श्री जगन्नाथ, बलभद्र और उनकी बहिन सुभद्रा की काष्ठ प्रतिमाएँ हैं। इन्हें प्रतिवर्ष अत्यन्त भव्य समारोहपूर्वक तीन विशाल रथों में लाखों श्रद्धालुओं की उपस्थिति में राजकीय सम्मान के साथ भक्तों द्वारा खींचते हुए, श्री गुण्डीचा मन्दिर तक लाया जाता है। आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से आरम्भ होकर रथयात्रा द्वादशी पर्यन्त चलती है। तालध्वज, देवदलन और नंदीघोष नामक ये तीन विशाल रथ बिना धातु प्रयोग के प्रतिवर्ष लकड़ी से बनाए जाते हैं। सामाजिक समरसता की दृष्टि से भी यह विश्वविख्यात पर्व है।

(७) **पोंगल** – पोंगल दक्षिणी भारत में, विशेषतः तमिलनाडु में मनाया जाने वाला कृषि पर्व है। प्रतिवर्ष जनवरी के मध्य अर्थात् मकर संक्रान्ति के समय प्रान्त की प्रमुख फसल गन्ना और धान के पक जाने पर ईश्वर को धन्यवाद देने वाला हर्षोल्लास का पर्व है। इस दिन वृषभ (बैल)-पूजा भी की जाती है।

(८) **लोहड़ी** – लोहड़ी उत्तर भारत, विशेषतः पंजाब में मकर संक्रान्ति की पूर्व संध्या में आग जला कर उसके चारों ओर नाचते-गाते सामूहिक रूप से मनाया जाता है। रेवड़ी, मूंगफली, लावा आदि अग्नि में अर्पित किए जाते तथा खाए और बाँटे जाते हैं। यह पर्व दूल्हा भट्टी नामक एक साहसी लोकनायक द्वारा एक छोटी आयु की कन्या का विधर्मी से जबरन विवाह रोकने और सुयोग्य वर से सम्पन्न कराने की लोककथा से जुड़ा है।

भारतीय समाज में पर्वों, उत्सवों, त्योहारों की विशाल परम्परा है यहाँ कुछ का ही स्वल्प परिचय दिया गया है। नववर्ष (गुड़ी पड़वा), होली, दीपावली, दशहरा, रक्षाबन्धन जैसे त्योहार सम्पूर्ण भारत में मनाए जाते हैं।

१५ अगस्त स्वतंत्रता दिवस और २६ जनवरी गणतन्त्र दिवस, स्वतन्त्रता के बाद से मनाए जाने वाले हमारे राष्ट्रीय पर्व हैं। इनसे हमारी सांस्कृतिक परम्परा और राष्ट्रीय एकता पुष्ट होती है।

कीजिए – क्या आपके ग्राम, नगर, जिले में कोई मेला लगता है? उसके सम्बन्ध में जानकारी जुटाइए।

व्रत – पर्व और त्योहारों की भाँति ही 'व्रत' भी हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। ये हमारी लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के सशक्त साधन हैं। व्रत का आध्यात्मिक अर्थ उन आचरणों से है जो शुद्ध, सरल और सात्त्विक हों तथा उनका विशेष मनोयोग और निष्ठापूर्वक पालन किया जाए। कुछ प्रमुख व्रत इस प्रकार हैं –

(१) **नवरात्र (दुर्गापूजा)** – नवरात्रि या नवरात्र शक्ति पूजा का नौ दिन चलने वाला व्रत है। चैत्र मास में आने वाला वासन्तिक नवरात्र और आश्विन मास का शारदीय नवरात्र विशेष प्रसिद्ध है। इनमें नौ दिनों तक शक्ति के विभिन्न रूपों की आराधना की जाती है।

(२) **वटसावित्री व्रत** – ज्येष्ठ मास की अमावस्या को सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा पवित्र वट वृक्ष की पूजा करके यह व्रत अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति एवं कल्याण की कामना से मनाया जाता है। महान सती सावित्री द्वारा अपने पति सत्यवान की यमराज के पाश से मुक्ति की कथा इस पर्व से जुड़ी है।

(३) **महाशिवरात्रि व्रत** – यह दिन भगवान शिव व माता पार्वती के विवाह प्रसंग से जुड़ा है। महाशिवरात्रि अनेक देशों में मनाया जाने वाला महापर्व है। यह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को मनाया जाता है।

(४) **चातुर्मास्य व्रत** – आषाढ़ शुक्ल (देवशयनी) एकादशी से कार्तिक शुक्ल (देवोत्थान) एकादशी तक वर्षाकालीन चार माह का यह पर्व चौमासा या चतुर्मास कहलाता है। यह अवधि अनेक व्रत, पर्व, उत्सवों से युक्त है। प्राय: सभी पंथ-संप्रदायों के साधु-संत इस अवधि में अनेक प्रकार की साधना तथा जीवनचर्या के व्रत (संकल्प) धारण करते हैं।

(५) **श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत** – भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को मथुरा में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। तब से यह पर्व आनन्दोल्लास पूर्वक सम्पूर्ण भारत में मनाया जाता है।

(६) **महालक्ष्मी व्रत** – भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से लेकर तीन दिनों तक चलने वाला यह व्रत धन-धान्य-समृद्धि की देवी लक्ष्मी की आराधना का व्रत है।

(७) **करवा चौथ** – कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चन्द्रोदय व्यापिनी (जिसमें चन्द्रमा उदित हो) चतुर्थी को सौभाग्य प्राप्ति व पति की दीर्घायु के लिए विवाहिता स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला यह प्रसिद्ध व्रत है।

(८) **ऋषि पंचमी** – मानव समाज की उत्पत्ति ऋषियों से हुई, उन्हीं से गोत्र परम्परा विकसित हुई। भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी को सप्तर्षियों का देवी अरुन्धति सहित पूजन कर अपनी ऋषि परम्परा को स्मरण करने का यह पावन व्रत है।

(९) **हरतालिका तृतीया व्रत** – भाद्रपद शुक्ल तृतीया को उत्तम वर प्राप्ति और सौभाग्य की कामना से माता पार्वती और शिव की पूजा का यह व्रत सौभाग्यकांक्षिणी व सौभाग्यवती महिलाएँ अत्यन्त श्रद्धाभाव से करती हैं।

नगरों के नाम

संस्कृति विकृति इतिहासों को प्रकट सदा करते हैं नाम।
व्यक्ति, वास्तु या नगर देश का नाम बताता है गुण धाम॥

भारत के नगरों-ग्रामों में से अनेक के नाम आक्रमणकारियों ने अपने शासनकाल में बदल दिए थे। समाज के जागरण से उठी माँग के कारण उनमें से कुछ के नाम पुन: बदले गए हैं। उनमें से कुछ प्रमुख नगरों के प्रचलित तथा नये नाम –

इलाहाबाद	प्रयागराज
हैदराबाद	भाग्यनगर
औरंगाबाद	छत्रपति सम्भाजी नगर
उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)	धाराशिव
अहमदनगर	अहिल्या नगर
फैजाबाद	अयोध्या
मुगलसराय	दीनदयाल नगर

पता कीजिए – आपके नगर या ग्राम का भी कोई सांस्कृतिक नाम रहा है क्या?

२. हमारा भारत राष्ट्र

भारत धर्मों की भूमि है, सभ्यताएँ इसकी गोद में पली हैं, यह वाणी की माता है, पुराणों की दादी है, परम्पराओं की परदादी है। विद्वान विचारक इस देश के दर्शन के लिये लालायित रहते हैं, और एक बार दर्शन होने पर, मात्र इसकी झलक मिलने पर उसे शेष विश्व के सम्मिलित शानदार प्रदर्शनों के लिये भी नहीं छोड़ना चाहते।

– मार्क ट्वेन (अमेरिकी लेखक)

भारतीय समाज व्यवस्था

भारतीय समाज रचना का मूल आधार एकात्मता है। वैदिक मान्यता है कि एक ईश्वर समस्त चर-अचर प्राणियों में अंशरूप में विद्यमान है। पुरुष सूक्त आदि वैदिक मंत्र 'सहस्र शीर्षा: पुरुषा: सहस्राक्ष: सहस्रपात्...' आदि में ईश्वर के जिस विराट स्वरूप का वर्णन करते हैं वह ईश्वर ही सारी सृष्टि का कारण है और सृष्टि उसी का अंग है। यह समाजपुरुष का ही रूप है। आइये, भारतीय समाज व्यवस्था की कुछ व्यवस्थाओं को जानते हैं –

वर्णाश्रम व्यवस्था – भारतीय परम्परा में व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों स्तरों पर कुछ आदर्श व्यवस्थाएँ निर्माण की गई हैं। वर्ण व आश्रम की व्यवस्था भारतीय समाज व्यवस्था का आधार रही हैं। इसे लेकर कई भ्रम भी निर्माण किए गए लेकिन आधारभूत व्यवस्था के रूप में इसे जानना ही चाहिए।

वर्णव्यवस्था

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत समाज में व्यक्तियों की क्षमता, रुचि, योग्यता तथा जीविकोपार्जन द्वारा किए जाने वाले कार्यों के आधार पर चार प्रकार से समाज को वर्गीकृत किया गया – (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण का वचन है मनुष्यों के चार वर्ण, गुणों एवं कर्म के आधार पर हैं। जो बौद्धिक कार्यों को कुशलतापूर्वक करते हैं, शिक्षण, अनुसंधान आदि में रुचि व योग्यता रखते हुए ऐसे कार्यों से समाज का सहयोग व अपनी आजीविका चलाते हैं, वे ब्राह्मण हैं। जिनकी रुचि बल साधना में, प्रशासनिक व रक्षा सम्बन्धी कार्यों में है, वे क्षत्रिय हैं। जिनको व्यापार-व्यवसाय में, खेती, गौ आदि पशुपालन में कुशलता प्राप्त है और वे इन कामों से अपनी जीविका चलाते हैं, उन्हें वैश्य कहा गया। इन कार्यों के अतिरिक्त भी कई कार्य होते हैं और उपर्युक्त कार्यों के लिए भी सुविधा हेतु जिनका सहयोग लिया जाता है, वे सेवा, श्रम, सहयोग प्रधान कार्य करने वाले शूद्र कहे गए।

यहाँ बहुत स्पष्ट समझना चाहिए कि एक ही पिता की भिन्न-भिन्न सन्तानों की अभिरुचि एवं दक्षता अलग-अलग होने पर इस कर्म आधारित वर्गीकरण में वे अलग-अलग वर्णों के सिद्ध होंगे। अर्थात् इनका पिता के वर्ण का उत्तराधिकारी होना अनिवार्य नहीं है। ऐसे अनेक महापुरुषों और सामान्य लोगों के उदाहरण हैं कि पिता के कार्य या कुशलता से अलग कार्यों में, वे शिक्षित हुए और उन कार्यों को करके सम्मानित और यशस्वी भी हुए। उदाहरण के लिए, ऋषि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे, वेदव्यास, वाल्मीकि आदि ऋषि तथा सन्त रविदास आदि ने आज की 'शूद्र' कही जाने वाली जातियों में जन्म लिया था।

भ्रम, नासमझी या राजनीतिक कारणों से इस सामान्य बात को इतना भ्रामक बना दिया गया कि वर्ण व्यवस्था जातिसूचक और जन्म आधारित रूप में अत्यन्त विकृत हो सामाजिक सुव्यवस्था के स्थान पर सामाजिक भेदभाव का कारण बन गई। समाज की पोषण व्यवस्था समाज की शोषण व्यवस्था बन गई। इन भ्रमों को दूर कर हम नए स्वस्थ, समरस व सहयोगी समाज की पुनर्स्थापना कर सकते हैं।

आश्रमव्यवस्था

सामाजिक कर्तव्य की दृष्टि से मनुष्य की कुल आयु को चार भागों में वर्गीकृत कर हर वर्ग के लिए विशेष जीवनचर्या और उद्देश्य निर्धारित किए गए। यही आश्रम व्यवस्था कहलाई। आश्रम भी चार हैं (१) ब्रह्मचर्य आश्रम (२) गृहस्थ आश्रम (३) वानप्रस्थ आश्रम और (४) संन्यास आश्रम।

(१) ब्रह्मचर्य आश्रम –

यह आश्रम मनुष्य की पच्चीस वर्ष की अवस्था होने तक उसके भावी जीवन निर्माण का काल है। अपनी योग्यता और समाज व राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार वह गुरुजनों के पास रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपने भावी जीवन को श्रेष्ठतम बनाने हेतु शिक्षा, कुशलता और अपने कर्तव्य का ज्ञान अर्जित करता है। इस हेतु निर्धारित आयु का यह पहला चौथाई भाग ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्याध्ययन

(२) गृहस्थाश्रम -

भारतीय परम्परा में विवाह पारिवारिक व सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए महत्त्वपूर्ण संस्कार है। यह केवल दो व्यक्तियों अर्थात् एक पुरुष एवं एक स्त्री का पारस्परिक सम्बन्ध, अनुबन्ध या समझौता नहीं है। ब्रह्मचर्य आश्रम के उपरान्त लगभग आधी आयु अर्थात् पचास वर्ष तक गृहस्थाश्रम की अवधि है। इस अवधि में अपनी अर्जित शिक्षा और कौशल का उपयोग कर धर्मपूर्वक धन अर्जित करना व अपना गृहस्थ जीवन चलाना, संतानोत्पत्ति द्वारा समाज में योग्य उत्तराधिकारी देना, वंश बढ़ाना और परिवार एवं समाज का पालन-पोषण करना गृहस्थ का ही दायित्व है। गृहस्थ आश्रम ही शेष तीनों आश्रमों का भी पोषक होता है। अत: इसे 'धन्यो गृहस्थाश्रम:' कहा गया है। सामाजिक रचना का प्रमुख आधार होने से शास्त्रों में गृहस्थाश्रम के विस्तृत आचार-विचार व धर्म निश्चित किए गए हैं।

(३) वानप्रस्थ आश्रम -

पचास वर्ष की अवस्था हो जाने पर अपने योग्य उत्तराधिकारी को पारिवारिक दायित्व सौंप कर, क्योंकि लगभग इस आयु तक सन्तानों का गृहस्थाश्रम आरम्भ हो चुका होता है, सांसारिक सुखों को त्याग जीवनयापन हेतु अत्यावश्यक साधन उपयोग कर समाज की सेवा करने की यह पच्चीस वर्षीय अवधि वानप्रस्थ आश्रम कहलाती है। इसमें समाज को ईश्वर स्वरूप मानकर उसकी नि:स्वार्थ सेवा और स्वयं के सुख साधनों के त्याग का आदर्श रहता है।

(४) संन्यास आश्रम -

हम गीत गाते हैं 'जीवन का आदर्श यहाँ पर परमेश्वर का धाम है'। चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यास, मोक्ष-प्राप्ति का आश्रम है। अपने मोक्ष व जगत के हित के लिए समस्त पारिवारिक, सांसारिक, दैहिक बन्धनों एवं भेदभाव से परे, विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन जीते हुए जीवन की पूर्णता तक लोकहित के कार्य में संलग्न हो जाना ही संन्यास है। संन्यास मूलत: एक आध्यात्मिक अवस्था है। इसके लिए गैरिक वस्त्र धारण करना परमावश्यक नहीं, पर संन्यास आश्रम के लिए ये बाह्याचार सहायक होते हैं।

अखण्ड भारत

जिस अखण्ड भारत की रचना की हो स्वयं विधाता ने।
सीमाओं की सिकुड़न भोगी हाय! हमारी माता ने।
माता का यह कष्ट आज भी अति दुर्भाग्य हमारा है।
खण्डित देश देखते कहते! भारत हमको प्यारा है॥

हम भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित और प्रदान की गई सम्पन्न और सांस्कृतिक धरोहर के उत्तराधिकारी हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत सबसे अधिक प्राचीन, सर्वाधिक विस्तृत एवं विविधतापूर्ण धरोहर है। परकीय शासकों ने इस राष्ट्र के १८५७ से १९४७ तक कई टुकड़े किए । भारत को विखण्डित कर सात देश और बना दिये। एक समान संस्कृति वाले आज के म्यांमार (ब्रह्मदेश), नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका आदि विशाल भारत का ही भू-भाग थे।

हम सबके मन में अपनी भारतमाता को फिर सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से अखण्ड एवं सशक्त बनाने का संकल्प अवश्य रहना चाहिए। हमारे देश से जो भू-भाग अलग हुए हैं उनमें से एक का उल्लेख इस प्रकार है –

श्रीलंका –

पौराणिक मान्यता है कि श्रीलंका को भगवान शिव ने बनाया था। बाद में उन्होंने इसे कुबेर को दे दिया था। कुबेर से रावण ने इसे अपने अधिकार में ले लिया था। भगवान राम ने रावण का संहार कर श्रीलंका को भारतवर्ष का एक जनपद बना दिया था। श्रीलंका भारतीय उपमहाद्वीप के दक्षिण में हिन्द महासागर में स्थित बड़ा द्वीप है। यह भारत के चोल और पाण्ड्य जनपद के अन्तर्गत था। २,३५१ वर्ष पूर्व तक श्रीलंका की प्रजा वैदिक धर्म का पालन करती थी। सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा और वहाँ के सिंहल राजा ने बौद्ध धर्म अपनाकर इसे राजधर्म घोषित कर दिया। बौद्ध और हिन्दू धर्मग्रन्थों के अनुसार यहाँ पर प्राचीनकाल में शैव, यक्ष और नागवंशियों का राज्य था। श्रीलंका के प्राचीन इतिहास के बारे में जानने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण लिखित स्रोत सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ महावंश है।

भाषिक विश्लेषणों से पता चलता है कि सिंहली भाषा गुजराती और सिन्धी भाषा से जुड़ी है। महारानी पद्मावती इसी सिंहल द्वीप की राजकुमारी थी।

श्रीलंका पर पहले पुर्तगालियों, फिर डच ने अधिकार किया। १८०० ईस्वी के प्रारम्भ में अंग्रेजों ने इस पर आधिपत्य जमाना प्रारम्भ किया और १८१८ में अपने पूर्ण अधिकार में ले लिया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अन्तर्गत तमिल और सिंहलियों के बीच साम्प्रदायिक एकता पर षडयन्त्रपूर्वक प्रहार किए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व १९३५ में श्रीलंका स्वतंत्र देश बन गया।

खण्डित हुए अंग जो माँ के ध्यान हमें यह धरना है।
पुनः अखण्डित राष्ट्र बने सब काम हमें वह करना है॥

एकात्मतास्तोत्रम्

एकात्मतास्तोत्रम् में हमारे राष्ट्र के सांस्कृतिक व भौगोलिक मानबिन्दुओं के साथ सभी क्षेत्रों के प्रत्येक काल के महापुरुषों का नाम स्मरण है। यहाँ इस स्तोत्र में आए वैज्ञानिक महापुरुषों के नामोल्लेख वाले श्लोक उद्‌धृत हैं –

वैज्ञानिकाश्च कपिलः कणादः सुश्रुतस्तथा।
चरको भास्कराचार्यो वराहमिहिरः सुधीः॥२६॥
नागार्जुनो भरद्वाज आर्यभट्टो वसुर्बुधः।
ध्येयो वेङ्कटरामश्च विज्ञा रामानुजादयः॥२७॥

अर्थ – महान् वैज्ञानिकों में कपिल मुनि (सांख्य दर्शन के प्रवर्तक), महर्षि कणाद (वैशेषिक दर्शन तथा परमाणु सिद्धान्त के प्रवर्तक), आचार्य सुश्रुत (शल्य चिकित्सा के प्रसिद्ध आचार्य, सुश्रुत संहिता के रचयिता, उनके द्वारा विकसित किए गए शल्य क्रिया के उपकरण आज भी उपयोग में आ रहे हैं, त्वचारोपण तथा मोतियाबिन्द की शल्यक्रिया के खोजकर्ता), चरक ऋषि (आयुर्वेद के प्रसिद्ध ज्ञाता, चरक संहिता के रचयिता, इस ग्रंथ का अनुवाद विश्व की कई भाषाओं में हुआ है), भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ में महाराष्ट्र में जन्मे महान गणितज्ञ और ज्योतिषज्ञ, गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत के खोजकर्ता), वराहमिहिर (मध्य भारत में जन्मे, गुप्तकालीन महान् ज्योतिषाचार्य तथा बृहत्संहिता नामक ग्रंथ के रचयिता।

नागार्जुन (आन्ध्र प्रदेश में जन्मे प्रसिद्ध रसायनशास्त्री और आयुर्वेदाचार्य, प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक, इनके द्वारा रचित पुस्तकों के चीन, जापान आदि की भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।), भरद्वाज ऋषि (विमान विद्या के खोजकर्ता, आयुर्वेद में भी एक परम्परा भरद्वाज से प्रारम्भ होकर चरक तक जाती है, 'अंशुतन्त्र' एवं आकाशशास्त्र नामक ग्रन्थ के रचयिता), आर्यभट्ट (५वीं सदी के महान गणितज्ञ तथा ज्योतिषाचार्य, आर्यभट्टीय नामक ग्रन्थ के रचयिता पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है, यह सिद्धान्त उन्होंने दिया।) प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री जगदीशचन्द्र बसु, चन्द्रशेखर वेंकट रमण, रामानुजन् ध्यान करने योग्य वैज्ञानिक हैं।

स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ

एक संन्यासी अपने सामने बैठे हुए श्रोताओं को कहानी सुना रहे थे – ''पुराने समय की बात है, जब घोड़ा पालतू जानवर नहीं था, घोड़ा मनुष्य की सवारी के काम नहीं आता था। वह स्वतंत्र था और अपनी इच्छानुसार घूमता तथा चरा करता था। एक बार घोड़े और बारहसिंगा के बीच लड़ाई हो गई। बारहसिंगा बलवान् था; उसने अपने सींगों से घोड़े को घायल कर दिया। पीड़ित घोड़ा मनुष्य के पास गया और कहा, ''बारहसिंगा को परास्त करने में आप मेरी सहायता कीजिए।'' मनुष्य ने घोड़े का कहना मान लिया और कहा– ''तुम मुझे बारहसिंगा के पास ले चलो।'' घोड़े ने मनुष्य को अपनी पीठ पर बिठाया और वे दोनों जंगल की ओर चल पड़े।

मनुष्य ने बारहसिंगा को परास्त कर खदेड़ दिया। घोड़ा बहुत प्रसन्न हुआ । मनुष्य के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की। फिर उसने मनुष्य से कहा, ''अब काम हो गया है, कृपया आप मेरी पीठ पर से उतर जाइए।'' परन्तु मनुष्य ने उसकी

सवारी नहीं छोड़ी। घोड़े को मनुष्य का गुलाम बनना पड़ा। देखो, घोड़ा अपने शत्रु पर विजय तो पा सका, परन्तु वह अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धो बैठा।''

इस संन्यासी का नाम था स्वामी रामतीर्थ। उनकी यह विशेषता थी कि वे अत्यंत कठिन विषय, सरल पद्धति से समझाया करते। जिस कहानी का उल्लेख हुआ है, उसका सार क्या है? बारहसिंगा और घोड़ा दोनों जंगल में एक-साथ रहने वाले प्राणी थे। परन्तु दोनों की आपसी लड़ाई का फल यह हुआ कि दोनों मनुष्य के गुलाम हो गए। इसी प्रकार यदि किसी देश के लोग आपस में लड़ते-झगड़ते रहे, तो बाहरी शत्रु देश के भीतर घुस कर, उस देश के मालिक बन बैठते हैं।

स्वामी रामतीर्थ का वास्तविक नाम गोस्वामी तीर्थराम था। वे रामचरितमानस के रचयिता कविकुलशिरोमणि संत तुलसीदास के वंशज थे। स्वामी रामतीर्थ के पिता हीरानंद पंजाब प्रांत के मुरलीवाला गांव के रहनेवाले थे। तीर्थराम का जन्म दीपावली के पर्व पर २२ अक्तूबर, सन् १८७३ को हुआ था।

वे पाँच वर्ष की आयु में पाठशाला जाने लगे । उनका शरीर दुर्बल था, परन्तु वे अत्यंत बुद्धिमान थे एवं उनकी स्मरणशक्ति तेज थी। पांचवीं कक्षा में ही उन्हें फारसी किताबें गुलिस्ताँ और बोस्ता और कई उर्दू कवितायें कंठस्थ हो गयी थीं। उन्हें खेलों में कोई रुचि नहीं थी। खाली समय में वे मंदिरों में जाकर बड़े मनोयोग से मन्त्र-पाठ सुना करते और बाद में उन मन्त्रों को वे अपने मित्रों को सुनाया करते थे।

दस वर्ष की आयु में उन्होंने प्राथमिक शिक्षा पूर्ण की। आगे की पढाई करने के लिये वे गुजराँवाला (अब पाकिस्तान में) गए। वहाँ वे अपने पिता के मित्र भगत धन्नारामजी के यहाँ रहने लगे । उन्होंने आजीवन धन्नारामजी को गुरु के समान पूज्य माना । माध्यमिक और महाविद्यालयीन पढाई करते समय वे अपने गुरु को बराबर चिट्ठियाँ लिखा करते। ऐसी एक हजार चिट्ठियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा में वे प्रथम आए, तब उनकी आयु केवल चौदह वर्ष की थी। नगर परिषद ने उन्हें छात्रवृत्ति दी । स्वाभाविकतः उन्हें आगे पढने की इच्छा हुई परन्तु पिता नहीं चाहते थे कि वे आगे पढ़ें। पिता की इच्छा के विरुद्ध वे महाविद्यालय में पढ़ने के लिए लाहौर गए। तब लाहौर भारत में ही था। वहाँ वे ज्ञानसाधना में मग्न हो गए। अप्रसन्न पिता ने उन्हें कोई सहायता नहीं भेजी । तीर्थराम को छात्रवृत्ति की अल्प राशि पर ही गुजारा करना पड़ता । प्रथम वर्ष तो जैसा-तैसा बीता परन्तु दूसरे वर्ष मुसीबतों के पहाड़ टूट पडे । वे रात-रात पढाई करते। कई बार वे बीमार पडे। तब भी वे एकान्त में अपना सारा समय पढ़ाई में ही बिताते थे। इन्टरमीडिएट की परीक्षा वे प्रथम स्थान से उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा के समय उन्होंने अपने प्रिय विषय फारसी के स्थान पर, संस्कृत विषय लिया था फिर भी उन्हें उनके परिश्रमों का उत्तम फल प्राप्त हुआ। उन्हें सरकारी छात्र- वृत्ति प्राप्त हुई।

अब तीर्थराम के मन में आत्मविश्वास बढ गया गुरु और भगवान् के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ती गई । उन्हें आत्मनिर्भर होता देख तथा मेरी सहायता के बिना पुत्र प्रगति कर रहा है, यह जानकर वे अधिक क्रुद्ध हुए। उन्होंने बहू को तीर्थराम के पास पहुँचा दिया। घर-गृहस्थी, फीस, किताबें आदि का खर्च उन्हें मिलनेवाली अल्प-सी छात्रवृत्ति में से करना पड़ता, परन्तु तीर्थराम डिगे नहीं। वे शान्त और सन्तुष्ट रहे। एक बार तो भोजन-खर्च के लिए उनके पास केवल तीन पैसे ही बचे। तब दिन में दो पैसे की रोटी-दाल खरीद कर लाये और रात्रि के भोजन के लिए एक पैसा बचा कर रख लिया। जब ढाबे के मालिक ने रोटी के साथ दाल देने से इन्कार कर दिया, तब वे सूखी रोटी खाकर और पानी पीकर रह गए।

उन्हें केवल ज्ञान-प्राप्त करने की ही क्षुधा थी, अन्य इच्छाओं के प्रति वे उदासीन थे। उनका रहन-सहन बहुत ही सादा था। वे हाथ से बुने वस्त्र पहना करते। सिर पर पगड़ी, बदन पर कुरता और पायजामा, यही उनकी पोशाक रहा करती। जूता अनेक वर्षों तक पहनने के कारण फटा-पुराना हो जाता परन्तु वे उसे ही पहनकर कॉलेज जाया करते। एक

दिन उनका एक जूता नाले में पानी के प्रवाह के साथ बह गया। तब रास्ते पर किसी महिला द्वारा फैंका गया दूसरे प्रकार का जूता पहिनकर ही वे कॉलेज गये।

तीर्थराम कहा करते, ''हम यदि वासनाओं को वश में कर लेते हैं और वासनाओं से मुक्ति पाते हैं, तो जो हम इच्छा करेंगे वह अपने-आप पूरी हो जाएगी। हमें उसके पीछे भागने की कोई आवश्यकता नहीं ।'' उनके स्वयं के जीवन की अनेक घटनाएँ इस तथ्य को सिद्ध करती हैं।

विश्वप्रेमी स्वामी रामतीर्थ भारत पर अगाध प्रेम करते थे। स्वामी विवेकानन्द ने गुलामी में पड़े हुए भारतवासियों को संदेश दिया था, ''भारतवासियों ! तुम अमर्त्य हो, तुम सिंह – सदृश पराक्रमी हो, तुम वीर हो, उठो, जागृत हो।'' इसी संदेश का प्रचार स्वामी रामतीर्थ ने भी अपने भाषणों और कहानियों द्वारा किया।

''भारत को स्वतंत्र करना होगा और वह स्वतंत्र होकर रहेगा। केवल आत्म-बलिदान से ही स्वतंत्रता प्राप्त होती है। अगले दस वर्षों में असंख्य राम पैदा होंगे और वे दुर्बलता और अज्ञान को मिटा डालेंगे। तब इस भूमि में नवचैतन्य का संचार होगा।''

''व्यक्तिगत-धर्म से मातृभूमि की सेवा का धर्म श्रेष्ठ है। देश के सामने जाति-संप्रदाय या तत्सम अन्य बातों का गौण स्थान है। जब एक जापानी युवक ने माता की सेवा करना, श्रेष्ठ धर्म मानकर सेना में भर्ती होने से इन्कार कर दिया, तब उसकी माता ने आत्महत्या कर ली और अपनी इस कृति से मानो उसने पुत्र को बताया कि मातृ-भक्ति या व्यक्तिनिष्ठा से देश-भक्ति श्रेष्ठ है।''

मनुष्य के दैनंदिन जीवन में सब कार्य करते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि रहे, यही स्वामी रामतीर्थ की सारी कहानियों का सारांश था। इसलिए उन्होंने अपने उपदेशों को 'व्यावहारिक वेदान्त' नाम दिया। हम समझते हैं कि संन्यासी को सामान्य लोगों के सांसारिक जीवन से कोई सरोकार नहीं और अध्यात्म ज्ञान का व्यवहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु रामतीर्थ कहा करते थे कि ऐसे जीवन-दर्शन पर विश्वास नहीं करना चाहिए जिसका आचरण करना संभव नहीं है। उनके विचारों में ओज और शक्ति थी क्योंकि वे वेदान्त-दर्शन से अनुप्राणित थे।

एक दिन स्वामी रामतीर्थ ने स्वामी नारायण से कहा, ''लगता है कि शीघ्र ही राम की कलम का लिखना बंद हो जाएगा, उसकी वाणी मौन हो जाएगी, अत: वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रचार करने का भार ग्रहण करने के लिये तुम्हें सिद्ध रहना होगा।'' इसके पाँचवे दिन गंगाजी में स्नान करने के लिये उन्होंने जैसे ही डुबकी लगाई वे भँवर में फँस गये। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी वे तैर कर भँवर के बाहर नहीं निकल सके। ओम्-ओम्-ओम् कहते हुए वे धारा में विलीन हो गए।

स्वामी रामतीर्थ का वचन –

मैं भारतवर्ष हूँ!

''भारतवर्ष मेरा शरीर है। हिमालय मेरा सिर है। मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिन्धु निकली हैं। विन्ध्याचल मेरी कमर की पेटी है। कोरोमण्डल मेरी बाँयी और मालाबार मेरी दाहिनी टाँग है। मैं सम्पूर्ण भारतवर्ष हूँ। पूर्व और पश्चिम हिमालय मेरी बाँहें हैं, जिन्हें मैंने मानव-समाज को आलिंगन करने हेतु फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओ! मेरे शरीर की आकृति कैसी है। मैं खड़े होकर अनन्त प्रकाश पर दृष्टिपात कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा विश्वात्मा है। जब मैं चलता हूँ, तब लगता है जैसे भारत चल रहा है। जब बोलता हूँ तब लगता है कि भारत बोल रहा है। जब श्वास लेता हूँ तब भारत ही श्वास लेता है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं शंकर हूँ। मैं शिव हूँ। यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है। यही है व्यावहारिक वेदान्त।

हमारे महापुरुष

भक्त नरसी मेहता

भक्त नरसी मेहता

भक्त नरसी मेहता का जन्म गुजरात में जूनागढ़ के तलाजा गांव में सन् १४१३ में हुआ। इनके पिता का नाम श्री कृष्ण दामोदर दास और माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी गौरी था। जन्म के पाँच वर्ष बाद ही इनकी माता का देहान्त हो गया। उनके बड़े भाई वंशीधर, जो इनसे १७ वर्ष बड़े थे एवं दादी जयकुँवरि ने इनका पालन-पोषण किया। नरसी आठ वर्ष के हो गए तब तक मुँह से एक शब्द भी नहीं बोला, इसलिए लोग इन्हें गूँगा कहते थे। दादी इन्हें एक साधु के पास ले गयी। साधु ने नरसी के कान में कहा 'राधे-कृष्ण' बोल। शब्द सुनते ही वह राधे कृष्ण बोल उठे। वह कृष्ण नाम का संकीर्तन करने लगे। दादी माँ की इच्छा के कारण बारह वर्ष की आयु में इनका विवाह माणिक गौरी के साथ हो गया। दादी के स्वर्गवास के बाद इनकी कठिनाइयाँ बढ़ गयीं। इनके एक पुत्री कुँवरबाई और एक पुत्र शामलदास हुआ।

बड़े भाई वंशीधर ने नरसी को जंगल से घोड़ों के लिए घास लाने का काम सौंपा जिसे वे निष्ठा से करते थे। एक दिन घास काटने के बाद जब रोटी मांगी तब भाभी ने सूखी रोटियाँ दे दीं। वे रोटियाँ इनके गले नहीं उतरी तो वह भूखे ही उठ गए। भाभी की शिकायत पर भाई ने इन्हें घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। वह शिवालय में चले गए तथा भूखे रहकर सात दिन तक भगवान शिव की आराधना की। शिवजी ने इन्हें दर्शन दिए तथा भगवान कृष्ण की नगरी द्वारका जाने के लिए कहा। द्वारका में भगवान श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और रासलीला में भी भाग लिया। अब वह घर आ गए। किन्तु भाभी का अभी भी वही स्वभाव था। वह कुछ कमाते नहीं थे, सारा समय हरिकीर्तन करते थे।

नरसी भगत की पुत्री के विवाह के समय एक सज्जन बहुत सा सामान लेकर आए और देकर चलने लगे। जब उनका नाम पूछा तो उन्होंने बताया कि उन्हें श्रीकृष्ण ने भेजा है। उन्होंने बताया कि वह श्रीकृष्ण के मित्र अक्रूर हैं। कन्या कुँवरबाई के विवाह में भगवान ने सोने के हार सहित अनेक वस्त्राभूषण दिए। पुत्र शामलदास का विवाह बड़नगर के दीवान मदनराय की पुत्री से तय हो गया। मदन राय ने नरसी मेहता को पत्र लिखा, 'मेरी प्रतिष्ठा के अनुरूप वरयात्रा में हाथी, रथ, पैदल और साजो-समान होना चाहिए। नहीं तो वरयात्रा लेकर मत आना।' माणिक गौरी घबराई तब नरसी ने कहा, 'भगवान पर भरोसा रखो सब हो जाएगा।' विवाह के दिन सारी व्यवस्था न जाने कहाँ से हो गयी। विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में मगन रहने वाले श्रेष्ठ भक्त नरसी मेहता अपनी ६५ वर्ष की आयु में परमधाम सिधार गए। तत्कालीन भक्तों की शृंखला में नरसी मेहता का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। इनका प्रिय भजन – **'वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे।'** बहुत प्रसिद्ध है।

जानिए – नरसी मेहता की बेटी के विवाह में भगवान की सहायता की अत्यन्त भक्ति भाव भरी कथा 'नानी बाई रो मायरो' नाम से प्रसिद्ध है। इसे खोजिए, सुनिए और भगवान की भक्तवत्सलता का अनुभव कीजिए।

३. हमारी भारतीय संस्कृति

संस्कृति अपने मानव शास्त्रीय अर्थ में उस सन्निकट परिकल्पना को कहते हैं, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, विधि–विधान, रीति-रिवाज अन्य व्यवहार और सामर्थ्य सम्मिलित हैं, जिन्हें मनुष्य अपने समाज से ग्रहण करता है।

– मानव वैज्ञानिक एडवर्ड टाईलर

अतीत के आलोक में यदि हम अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं को परखें तो ज्ञात होता है कि हमारे उच्चादर्श विश्व के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं। इस देश की ऋषि परम्परा एवं संतों ने अपने अनुपम ज्ञान एवं चरित्र के संगम से संसार को संवारने का कार्य कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। हमें ऋषियों से प्राप्त श्रेष्ठतम भारतीय संस्कृति पर गर्व है।

विश्व के समस्त मनुष्यों को अपने चरित्रों की शिक्षा देने की अद्‌भुत क्षमता भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में है–

एतद्‌देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनाः।
स्वं-स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

हमारी संस्कृति के संवाहकों एवं विशिष्ट वांग्मय के सृजनकर्ताओं, तत्त्ववेता ऋषि–मुनियों, साधु–सन्तों तथा मनीषी–विद्वानों ने अपनी कठोर तपस्या एवं प्रखर अनुसंधान से परिष्कृत कर जो वैज्ञानिक परम्पराएँ प्रारम्भ कीं, वे अद्वितीय हैं। आइये, हम इनका अध्ययन करें।

संस्कारों की पावन परम्परा

दोषापनयनं गुणान्तराधानं संस्कारः।

अर्थ – दोषों को दूर करना तथा गुणों में वृद्धि करना, संस्कार है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। यह अध्यात्म की आधार भूमि पर विकसित हुई है। मानव–जीवन को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनाने के लिए हमारे पूर्वजों का सुदीर्घकालीन चिन्तन रहा। अनुभव, ज्ञान और प्रमाण के आधार पर मानव जीवन श्रेष्ठ बने, अपने उदात्त उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु समर्थ बने, यह क्षमता उत्पन्न हो एवं बनी रहे, उसके लिए अपेक्षित सद्‌गुण संस्कार कहलाते हैं। शास्त्रों का कथन है कि अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) की शुद्धि के लिए संस्कार आवश्यक हैं। संस्कार दो प्रकार की प्रक्रिया है – पहली मलापनयन या दोषापनयन अर्थात् दोषों को दूर करना। दूसरी 'गुणान्तराधान' या 'अतिशयाधान' अर्थात् सद्‌गुणों का सतत विकास करना।

मनुष्यों में मानवीय सद्‌गुणों एवं देवत्वभावना का आधान करने के लिए उन्हें संस्कारयुक्त किया जाना आवश्यक है। विधिपूर्वक संस्कार साधन से दिव्य ज्ञान एवं देवत्व भाव का विकास होता है। संस्कार ही मनुष्य को पाप, अज्ञान और अधर्म से दूर रखकर उन्हें आचार–विचार, कर्मनिष्ठा और ज्ञान–विज्ञान से संयुक्त करते हैं। संस्कारों के जागरण से मनुष्य में सद्‌बुद्धि बनी रहती है और हृदय में त्याग, संयम, प्रेम, उदारता, धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता आदि श्रेष्ठ भावनाओं का विकास होता है। संस्काररूपी देवी–सम्पत्ति के फलस्वरूप वह जीवन में सच्चे सुख और शान्ति को प्राप्त करता है।

भारतीय धर्मशास्त्रों की दृष्टि में मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह अनेक योनियों में भ्रमण करने के कारण

मन्द पड़ चुके संस्कारों का परिमार्जन कर मनुष्योचित उज्ज्वल एवं प्रखर संस्कारों को धारण करे। सुसंस्कार का अर्थ है, स्वभाव, व्यवहार, आचरण अथवा जीवन का वह कार्य जिससे मानव की योग्यता, मानवता, कर्त्तव्यपरायणता आदि का बोध होता है। इतिहास साक्षी है, उत्तम संस्कारवान व्यक्ति ही महापुरुष कहलाए हैं।

संस्कारों की यह परम्परा हमारी संस्कृति में युगों से चली आ रही है। अनेक ऋषियों, चिन्तकों, विचारकों ने अपने अनुभवों और अनुसन्धानों से इसे संशोधित किया है। यही कारण है कि संस्कारों के प्रमुख भेद, प्रकार और नामों तथा संख्या और स्वरूप में कई मत-मतान्तर भी प्राप्त होते हैं। महत्त्वपूर्ण है कि ये सभी एक ही मूल उद्देश्य की प्राप्ति के साधन हैं – श्रेष्ठ मानव जीवन का विकास।

कीजिए – ऐसे पाँच संस्कार (गुण) जो आपके जीवन में लाने के लिए आप संकल्पित हैं, निश्चित करके उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

भारतीय संस्कृति में ॐ का महत्व

हमारी संस्कृति की परम्परा है कि प्रायः सभी मन्त्रों एवं योग आदि क्रियाओं के आरंभ में प्रणवाक्षर ॐ का उच्चारण किया जाता है। ॐ की महिमा –

कठोपनिषद् में भी बताई गई है –

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(वल्ली २, श्लोक १६)

ॐ अक्षर ही ब्रह्म है और यही परम अक्षर है अतः साधक इस अक्षर के द्वारा प्रत्येक अभीष्ट रूप को प्राप्त कर सकता है।

व्यावहारिक वेदान्त के व्याख्याता स्वामी रामतीर्थ जी ने कहा है, ''ॐ में ऐसी मनमोहिनी शक्ति, ऐसी पूर्णता, ऐसा गुण है जो तुरन्त उच्चारण करने वाले के मन को वश में कर लेता है, जो समस्त भावनाओं और समस्त विचारों को एकता की दिशा में ले जाता है।''

वे कहते हैं, ''जब तुम चलते हुए ॐ का उच्चारण करोगे तब देखोगे कि स्वयं वायुमण्डल ही तुम्हें प्रेरित कर रहा है और तुम्हारे भीतर अपूर्व तथा अद्भुत विचार आ रहे हैं।''

''ॐ शब्द हर बच्चे के पास उसके अन्तर से आता है।'' स्वामी रामतीर्थ जी का यह मात्र विचार नहीं, अनुभव-कथन है।

ॐकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

बिन्दु यानि अनुस्वार युक्त ॐकार का योगीजन नित्य ध्यान करते हैं क्योंकि यह काम अर्थात् सांसारिक पदार्थों व मोक्ष यानि आध्यात्मिक उपलब्धि को प्रदान करने वाला है।

योग का अर्थ 'जोड़ना' है। कक्षाओं, सभाओं, व्याख्यानों के आरम्भ में ॐकार (ब्रह्मनाद) का उच्चारण हमें उस विषय से जोड़ता है, उसमें एकाग्र करता है।

ब्रह्मनाद करने के लाभ-

प्रतिदिन ब्रह्मनाद करने से अनेक लाभ मिलते हैं। ॐकार के उच्चारण से कंठ में विशेष कम्पन होता है, जिससे मांसपेशियों को शक्ति मिलती है। गले की सूजन, थायराइड रोग तथा स्वरदोष भी दूर होते हैं। वैज्ञानिक शोध से पता चला है कि मात्र छः मिनट ॐकार का उच्चारण करने से मस्तिष्क में विशेष कम्पन होने के कारण ऑक्सीजन का पर्याप्त प्रवाह होता है, परिणामस्वरूप तनाव व मस्तिष्क रोग दूर होते हैं, स्मरण शक्ति बढ़ती है। प्रतिदिन सुबह-शाम निरन्तर तीन महीने तक छः मिनट का ब्रह्मनाद करने से रक्त संचार संतुलित होता है, रक्त में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ता है। इसके उच्चारण से रक्तचाप, हृदय रोग तथा कोलेस्ट्रोल की अधिकता जैसे रोग ठीक होते हैं। घबराहट, बेचैनी व भय से मुक्ति मिलती है। अतः हमें प्रतिदिन ब्रह्मनाद अवश्य करना चाहिए।

धर्म

यहाँ हम धर्म के मर्म को समझने का प्रयत्न करेंगे। रामचरितमानस की यह चौपाई स्मरण कीजिए -

परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।

धर्मयुक्त कर्म करेंगे तो पुण्य मिलेगा और अधर्मयुक्त कर्म करेंगे तो पाप। अठारह पुराणों में पाप व पुण्य को समझाते हुए यही कहा है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

अर्थात् पर उपकार करना ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। पुण्य व पाप की इतनी संक्षिप्त व सरल परिभाषा और नहीं हो सकती।

धर्म का अंग्रेज़ी अनुवाद या अर्थ रिलिजन (Religion) नहीं है। रिलिजन से तात्पर्य है, पन्थ या सम्प्रदाय। प्रत्येक पन्थ या सम्प्रदाय का कोई एक संस्थापक होता है, कोई एक ग्रन्थ होता है और एक निश्चित पूजा-पद्धति होती है। पन्थ या सम्प्रदाय की यह परिभाषा धर्म पर बिल्कुल लागू नहीं होती। धर्म की संकल्पना व्यापक है।

सृष्टि के प्रायः सभी कार्य किसी न किसी निश्चित प्राकृतिक नियम से होते हैं, जैसे- रात-दिन होना, ऋतुओं का आना-जाना, ज्वार-भाटा आना, ग्रह-नक्षत्रों का आपस में न टकराना इत्यादि। सृष्टि का नियमन करने वाली यह व्यवस्था सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुई है। सृष्टि को संचालित करने वाले इन नियमों को वैश्विक सिद्धान्त (Universal Law) कहते हैं। ये वैश्विक सिद्धांत ही धर्म हैं। धर्म का यह मूल स्वरूप है। इसी धर्म से सृष्टि की धारणा होती है, अतः धर्म की परिभाषा दी गई, **'धारणाद्धर्ममित्याहुः।'** जो धारणा करता है, उसे धर्म कहते हैं।

धर्म अनेकार्थी शब्द है। धर्म का मूल अर्थ है, विश्व नियम, किन्तु धर्म शब्द अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। प्राणियों का स्वभाव भी धर्म कहलाता है। जैसे- सिंह कभी घास नहीं खाता, वह माँस खाता है, यह सिंह का धर्म है। जबकि गाय माँस नहीं खाती, घास खाती है। यह गाय का धर्म है, अर्थात् गाय का स्वभाव है। अतः धर्म का एक अर्थ स्वभाव भी है।

प्राणियों की तरह पदार्थों के स्वभाव गुणधर्म कहलाते हैं। जैसे - अग्नि ऊष्ण होती है, वह जलाती है। जलाना या ऊष्णता देना अग्नि का गुण धर्म है। इसी तरह शीतलता पानी का गुण धर्म है। अत: धर्म का एक अर्थ गुणधर्म भी है। यह धर्म विश्व नियम का ही एक आयाम है, इसे प्रकृति धर्म भी कहते हैं।

समाज जीवन में व्यक्ति अनेक भूमिकाएँ निभाता है। जैसे व्यक्ति अपने घर में माता-पिता होता है, भाई होता है या पुत्र होता है। विद्यालय में वह विद्यार्थी या शिक्षक होता है। बाजार में वह ग्राहक या व्यापारी होता है। इन सभी भूमिकाओं में उसके कर्त्तव्यों को भी धर्म कहते हैं, जैसे पितृधर्म, पुत्रधर्म, मातृधर्म, शिष्यधर्म और शिक्षक धर्म; अर्थात् धर्म का एक अर्थ कर्तव्य है।

मनुष्य ने प्रकृति धर्म से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को व्यवस्थित चलाने के लिए कुछ व्यवस्थाएँ बनाई हैं। जैसे समाज-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था आदि। ये व्यवस्थाएँ मनुष्य समुदाय को धारण करती हैं, अत: इन्हें भी धर्म कहते हैं।

सृष्टि की धारणा हेतु मनुष्य को अपने में अनेक गुण विकसित करने होते हैं। इन्हें सद्गुण या जीवन-मूल्य कहते हैं। इन जीवन-मूल्यों को भी धर्म कहा गया है। इस अर्थ में मनुस्मृति का यह श्लोक प्रसिद्ध है -

धृति:क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध ये दसों गुण धर्म के लक्षण हैं। अर्थात् धर्म का एक अर्थ जीवन-मूल्य भी है।

धर्ममय जीवन सुसंस्कृत समाज के लिए आवश्यक तत्त्व है। धर्म आधारित जीवन-व्यवहार सबसे अपेक्षित है।

हमारी मान्यताओं के वैज्ञानिक आधार

हिन्दू संस्कृति की मान्यताओं के वैज्ञानिक आधार हैं, ये रूढ़ियाँ नहीं हैं -

प्रश्न - मेंहदी लगाने का वैज्ञानिक कारण क्या है?

उत्तर - मेंहदी औषधीय गुणों से युक्त प्राकृतिक वनस्पति है। हथेलियों और तलुओं में मेंहदी लगाने के दो प्रमुख प्रभाव होते हैं-एक, वे अधिक समय कीटाणुरहित होते हैं दूसरे ग्रीष्मकाल में इससे देह का ताप नियंत्रित रखने में सहयोग मिलता है। मेहंदी की सुगन्ध से तनावमुक्त होने में सहायता मिलती है। इन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए विवाह या अन्य मांगलिक अवसरों पर मेंहदी लगाने की परम्परा है।

प्रश्न - मातृशक्ति पैरों की उँगलियों में बिछिया क्यों पहनती हैं?

उत्तर - पैरों में बिछिया पहनना भारतीय संस्कृति का अंग है लेकिन उसके वैज्ञानिक लाभ भी हैं। सामान्यत: बिछिया को पैर के अंगूठे के पास वाली अंगुली में पहना जाता है। इस अंगुली की नसें महिलाओं के गर्भाशय तथा हृदय तक सम्बन्ध रखती हैं। इन अंगुलियों में बिछुआ पहनने से गर्भाशय और हृदय की बीमारियों की सम्भावना कम हो जाती हैं। चाँदी की रिंग (बिछिया) ध्रुवीय ऊर्जा से शरीर को ऊर्जावान बनाती रहती है।

४. भारतीय परिवार व्यवस्था

भाषा-भूषा-भवन में संस्कृतिगत संस्कार।
साथ करे भोजन, भ्रमण, भजन हिन्दु परिवार॥

भारत में परिवार समाज की प्रथम इकाई है। यह रक्त सम्बन्धों से बनता है। रक्त सम्बन्धी होने से परिवार का आपसी सम्बन्ध अटूट होता है।

भारतीय परिवार व्यवस्था संसार की सभी समाज व्यवस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ है। परिवार की तीन-चार पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं। सबका परस्पर सहयोग और अनुभवों का लाभ मिलता है। विशेषत: बच्चों का विकास और वृद्धों की देखभाल जिस आत्मीयता और भावपूर्ण भारतीय परिवार व्यवस्था में होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उत्तरदायित्व सांझे होते हैं इसलिए अकेलापन अनुभव नहीं होता। संयुक्त परिवार, समाज का ही छोटा स्वरूप है।

परिवार के प्रति हमारा व्यवहार –

परिवार में परस्पर सभी रक्त सम्बन्धी होते हैं। जैसे- दादा से पिता, ताऊ, चाचा तथा इनसे इनके पुत्र-पुत्री सभी हमारे परिवार के अंग हैं। हमारा दायित्व है कि अपने से बड़ों की आज्ञा पालन करते हुए उनके कार्य में सहयोग करें तथा उनकी समय-समय पर सेवा करें। यदि आवश्यकत हो तो असाध्य रोग की स्थिति में उनको रक्तदान/अंगदान करने में भी पीछे नहीं हटें।

पारिवारिक सम्बन्ध सुदृढ़ बनाने के व्यवहार –

घर के बड़े सदस्यों को अन्य सम्बन्धियों से मिलते रहना चाहिए। अवकाश के दिनों में उनको अपने घर बुलाना चाहिए। सन्तोषप्रद समाचार होने पर प्रत्यक्ष भेंट करना, सम्भव हो तो पत्र लिखकर या मोबाइल से बात-चीत करना, उन्हें शुभकामना और आशीर्वाद देना। घर के किसी सदस्य पर संकट आने पर स्वयं जाकर धीरज बंधाना। अपनी ओर से यथासंभव सहायता करना। इससे सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं। बड़ों का कर्त्तव्य है कि वह सम्बन्धियों से बच्चों का परिचय भली-भाँति कराएँ। छोटे सदस्यों का कर्त्तव्य है कि वे समय-समय पर तथा विशेष अवसरों, वर्ष-त्योहारों पर परिवार के बड़ों से आशीर्वाद प्राप्त करें।

परिवार में भोजन कराने की व्यवस्था –

आधुनिक जीवन शैली में भोजन परोसने वालों का अभाव हो रहा है। किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भोजन परोसने पर हमें अधिक प्रसन्नता व तृप्ति होती है। परोसने वालों को मुख्यत: ध्यान में रखने योग्य बातें हैं - हाथ-पैरों व बर्तनों की स्वच्छता, परोसने का ढंग, कौन सा पदार्थ-किसे, कितना, कैसे परोसना है आदि। परोसते समय ध्यान रखें कि सभी पदार्थ सभी को उपलब्ध हो जायें। खाने वालों की आवश्यकता तथा रुचि के अनुरूप परोसना चाहिए। परोसते समय पदार्थ व्यर्थ न करते हुए प्रसन्न चित्त से परोसना चाहिए। प्रेमपूर्वक परोसा गया भोजन मानसिक तृप्ति और शारीरिक पोषण देता है।

सेवा की सर्वोत्तम रीति –

स्वयं के लिए किसी भी वस्तु की अपेक्षा न करते हुए, दूसरों की आवश्यकताएँ ध्यान में रखकर उनकी पूर्ति करना ही सेवा है। तन-मन-धन से की जाने वाली सेवा को 'त्रिविध' सेवा कहते हैं। कुछ लोग अपने सहज स्वभाव से

ही दूसरों की सेवा में जुट जाते हैं। वे पशु–पक्षियों तथा अपरिचित व्यक्ति की भी सहज ही सेवा करते हैं। निष्काम अर्थात् बदले में किसी लाभ की इच्छा के बिना की गई सेवा अतिश्रेष्ठ सेवा है। सेवा करने का अवसर मिलना सौभाग्य समझना चाहिए।

भारतीय भाषाएँ

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल॥

भाषाओं की दृष्टि से भारत अत्यन्त सम्पन्न देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हैं। उनमें प्रचुर साहित्य भी रचा गया है। मातृभाषा में शिक्षण सहज स्वाभाविक और मनोविज्ञान सम्मत है। विश्वभर के भाषाविज्ञानी विद्वान मानते हैं कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए, परन्तु भारत में अंग्रेजी भाषा का मोह इतना फैल चुका है कि आज सभी वर्ग उसी ओर जाना चाहते हैं। अपनी अनेक समृद्ध भाषाओं के होते हुए भी एक विदेशी भाषा को शिक्षण माध्यम के रूप में शिक्षण संस्थाओं में प्रतिष्ठित किए हुए है।

अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी पराधीनताकाल में बनाया गया था। आज अंग्रेजी भाषा को माध्यम के रूप में स्वीकार करने का सबसे बड़ा कारण बाजार का दबाव और अच्छे कैरियर की चिन्ता है। माता–पिता का मानना है कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त बालक का भविष्य सुनहरा एवं सुखद होगा। जबकि मातृभाषा में अध्ययन करने से हमें विषय अधिक अच्छी तरह से समझ में आता है और सफलता की संभावना अधिक होती है। बोलियाँ भाषा के लिए नींव का काम करती हैं, नींव जितनी मजबूत होगी भवन उतना ही मजबूत बनेगा।

शिक्षा यदि मातृभाषा में होगी तो श्रेष्ठ विद्वान उत्पन्न होंगे जो विषय को रटकर नहीं बल्कि समझकर आगे बढ़ेंगे व नए ज्ञान को पुराने से जोड़कर नवनिर्माण करेंगे। भाषा के रूप में अंग्रेजी ही क्यों, अनेक देशी–विदेशी भाषाएँ सीखना बहुत अच्छा है। मातृभाषा में शिक्षण से होने वाले लाभ इस प्रकार हैं –

१. **मातृभाषा और ज्ञान का स्तर** – मातृभाषा में पठन–पाठन करने वाले विद्यार्थी का ज्ञान विषय की गहराई तक होता है। वह विषय को समझकर पढ़ता है, केवल रट कर परीक्षा में नहीं लिखता।
२. **सांस्कृतिक संरक्षण** – मातृभाषा संस्कृति की वाहक होती है। उसमें अध्ययन के द्‌वारा बच्चा अपनी संस्कृति से जुड़ा रहता है व उसके संरक्षण एवं समृद्धि के लिए तत्पर रहता है।
३. **स्वस्थ मानसिक विकास** – मातृभाषा से स्वस्थ मानसिक विकास होता है। बच्चा सभी विषयों को शैशव से ही समझता और सीखता रहता है।
४. **मूल्यों का विकास** – बालक में नैतिक–आध्यात्मिक मूल्यों का विकास मातृभाषा से होता है।

विचार कीजिए –

१. घर, परिवार तथा उन स्थानों पर जहाँ लोग आपकी मातृभाषा समझते हैं वहाँ अंग्रेजी बोलना क्यों उचित है? मातृभाषा में वार्तालाप करते समय बीच–बीच में अंग्रेजी के शब्द घुसाना कितना आवश्यक है?
२. क्या आप अपने घर की परम्परागत बोली बोल सकते हैं? हाँ, तो उसे बोलना न छोड़िये। यह गौरव की बात है, संकोच की नहीं।
३. लोकोक्तियाँ व मुहावरे अनुभूत ज्ञान का खुला खजाना हैं। अपनी भाषा छोड़कर इस कोष से हाथ मत धोइये।

स्वदेशी से स्वतन्त्रता

देश का सामर्थ्य प्रगटे जय स्वदेशी, देश का वैशिष्ट्य दमके जय स्वदेशी।
देश के कण-कण से गूँजे जय स्वदेशी, देश को फिर से जग पूजे जय स्वदेशी॥

आज सैन्य-बल, संसार को प्रभावित करने वाली एकमात्र शक्ति नहीं है। 'अर्थ-बल' सत्ता हथियाने का अत्यधिक सफल अस्त्र बन गया है। अविकसित तथा विकासोन्मुख राष्ट्रों को विकसित देश अपने उत्पादनों की एक अच्छी मण्डी के अतिरिक्त कुछ नहीं समझते। दुर्बल अर्थव्यवस्था वाले देशों को अपनी लूट का निशाना बनाकर धीरे-धीरे वहाँ की सत्ता हथिया लेते हैं। एक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हमारे देश में व्यापार के लिए आकर बाद में हम पर शासन किया। आज अनेक कम्पनियाँ आ गई हैं।

स्वतन्त्रता के उपरान्त की अनुचित अर्थनीति ने हमारे देश की शेष समृद्धि को भी नष्ट कर दिया, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को निमन्त्रण देकर हमने लुटेरों को अपने घर में रहने की अनुमति दी।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आर्थिक शोषण के साथ ही हमारी सोच को विकृत कर उपभोक्तावादी बनाती हैं। बहुराष्ट्रीय विदेशी कम्पनियों के उत्पादनों का प्रयोग कर हम अपने राष्ट्र को आर्थिक पराधीनता की ओर धकेलते जा रहे हैं। यह आवश्यक है कि हम अपनी मातृभूमि के हितों की रक्षा स्वयं करें।

स्वतन्त्रता संग्राम में भारतवासियों ने विदेशी शासन को स्वदेशी के अस्त्र से पछाड़ा था। तब लोकशक्ति ने स्वदेशी अपनाकर विदेशी शासकों का यहाँ रहना असम्भव कर दिया था। आज विदेशी शक्तियों के षड्यन्त्र को असफल करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। जब हम स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग करेंगे तब विदेशी उत्पादकों का भारत में रहना उनके लिए हानिकारक हो जायेगा। स्वदेशी उत्पादनों के प्रयोग द्वारा हम अपने श्रमिक से उद्योगपति तक को दृढ़ बनायेंगे। भारत का गौरव, हम सब का गौरव है। मातृभूमि का मान बढ़ाओ, स्वदेशी उत्पादन ही अपनाओ।

सोचिये और लिखिये –

अपने घर में प्रयुक्त होने वाले उत्पादनों की एक सूची बनाइये और विचार कीजिये कि इनमें से स्वदेशी वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं? 'स्वदेशी अपनाना राष्ट्रीयता को दृढ़ करने का मार्ग है', विषय पर एक विचारपूर्ण निबन्ध लिखें।

देश उठेगा

देश उठेगा अपने पैरों निज गौरव के भान से।
स्नेह भरा विश्वास जगाकर जीयें सुख सम्मान से॥
देश उठेगा ..... ॥ध्रु.॥
परावलम्बी देश जगत में, कभी न यश पा सकता है।
मृगतृष्णा में मत भटको, छीना सब कुछ जा सकता है॥
मायावी संसार चक्र में कदम बढ़ाओ ध्यान से।
अपने साधन नहीं बढ़ेंगे औरों के गुणगान से .... ॥१॥
इसी देश में आदिकाल से अन्न, रत्न, भण्डार रहा।
सारे जग को दृष्टि देता, परम ज्ञान आगार रहा॥
आलोकित अपने वैभव से, अपने ही विज्ञान से।
विविध विधाएँ फैली भू पर अपने हिन्दुस्थान से ... ॥२॥

विश्व योग दिवस

अथक किया था श्रम अनगिन जीवन अर्पित निर्माण में।
मर्यादित उपभोग हमारा, पवित्रता हर प्राण में।।
परिपूरक परिपूरण सृष्टि, चलती ईश विधान से।
अपनी नव रचनाएँ होंगी, अपनी ही पहचान से ... ।।३।।
आज देश की प्रज्ञा भटकी, अपनों से हम टूट रहे।
क्षुद्र भावना स्वार्थ जगा है, श्रेष्ठ तत्त्व सब छूट रहे।।
धारा 'स्व' की पुष्ट करेंगे समरस अमृत पान से।
कर संकल्प गरज कर बोलें, भारत स्वाभिमान से ... ।।४।।
केवल सुविधा अधिकारों की भाषा अब हम नहीं कहें।
हों कर्त्तव्यपरायण सारे, अवसर सबको सुलभ रहें ।।
माँ धरती को मुक्त करेंगे, दुख-दुविधा-अपमान से।
जय जय अम्बर में गूँजेगा सभी दिशा उत्थान से.. ।।५।।
देश विघातक षड्यन्त्रों के जाल बिछे हैं सावधान।
इस माटी को प्रेम करें जो, बस उनको ही अपना मान।।
कोई ऊपर नहीं रहेगा, भारत के संविधान से।
देशद्रोहियों को कुचलेंगे, देशभक्त की शान से .. ।।६।।
देश उठेगा अपने पैरों निज गौरव के भान से।
स्नेह भरा विश्वास जगाकर जीयें सुख सम्मान से।।

विशाल सौर ऊर्जा संयंत्र (गुजरात)

देश की रक्षा करते भारतीय सैनिक

सन्तवाणी

थोड़े शब्दों में जब जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाली कोई महत्त्वपूर्ण बात कही जाती है तो उन्हें सुभाषित कहते हैं। यहाँ प्रस्तुत हैं हिन्दी के कुछ सुभाषित दोहे -

माखी गुड़ में गड़ि रही पंख रह्यो लिपटाय।
हाथ मले और सिर धुनै, लालच बुरी बलाय।।
साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय।।
जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठ।।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय।।
तरुवर फल नहि खात है, सरवर पियहिं न पान।
कह रहीम पर काज हित, संपति संचहिं सुजान।।

इनका अर्थ समझकर ऐसे और सुभाषित संगृहित कीजिए।

५. हमारी ज्ञान परम्परा

भारतीय दर्शन के गूढ़ ज्ञान के सामने यूरोप के अधिकांश दार्शनिक विद्यालयीन छात्र लगते हैं। जेम्स वुड्स के शिष्यत्व में पाणिनि का योगशास्त्र सीखने में बिताए गए एक वर्ष ने मुझे एक प्रबुद्ध रहस्यवादी की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है। मेरी कविता में भारतीय विचार तथा संवेदनग्राह्यता का प्रभाव है।

-टी॰एस॰ इलियट (अमेरिकी कवि)

हमारी दृष्टि समग्रता की है

भारतीय जीवन दृष्टि में मात्र व्यक्ति का विचार न कर समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी का भी विचार किया गया है। व्यष्टि के विचार से समष्टि का विचार व्यापक है, समष्टि से सृष्टि का विचार व्यापक है और सृष्टि से भी परमेष्ठी का विचार व्यापक है। हमारे विचार का केन्द्र बिन्दु व्यष्टि नहीं है, परमेष्ठी है। परमेष्ठी के विचार में व्यष्टि, समष्टि व सृष्टि का विचार स्वत: समाविष्ट है। भारतीय जीवन दृष्टि खण्ड-खण्ड में नहीं, समग्रता में विचार करती है। इसी कारण हमारे समाज जीवन में संघर्ष नहीं, समन्वय है। एक के विरुद्ध दूसरा नहीं होता। एक को मिलेगा तो दूसरे को नहीं मिलेगा, ऐसा नहीं है। सबको अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार मिलेगा। हमारी श्रद्धा है कि 'भगवान कभी भूखा नहीं सुलाता।' अर्थात् सृष्टि में जितने भी प्राणी हैं, सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति करती है।

सम्पूर्ण विश्व का विचार -

भारतीय जीवन दृष्टि केवल भारत का नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का विचार करती है, चराचर जगत का विचार करती है। भारत के मनीषियों ने कहा, 'सर्वे भवन्तु सुखिन:'। सम्पूर्ण जगत के कल्याण की कामना करने वाली भारत की जीवन दृष्टि है। शान्तिपाठ में 'सम्पूर्ण सृष्टि में शान्ति स्थापित हो' यही कामना की गई है – "ॐ द्यौ: शान्तिरन्तरिॅं शान्ति: पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति: वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्ति:, शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि।। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।।"

अर्थात् हे परब्रह्म परमेश्वर! शान्ति स्थापित करें। तीनों लोकों में, जल में, धरती में और आकाश में अन्तरिक्ष में, अग्नि में, पवन में, औषधि में, वनस्पति में, सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित करें।

भारत में प्रत्येक मत-पन्थ के विचारकों ने भारतीय जीवन दृष्टि के इन सभी सिद्धान्तों को एकमत से स्वीकारा और अपने जीवन में उतारा है। भारत का सामान्य व्यक्ति भले ही इन सूत्रों का अर्थ नहीं जानता हो, उसके व्यवहार में ये सिद्धान्त आज भी दिखाई देते हैं।

वेदांग

छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रौत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा 41-42)

शिक्षा

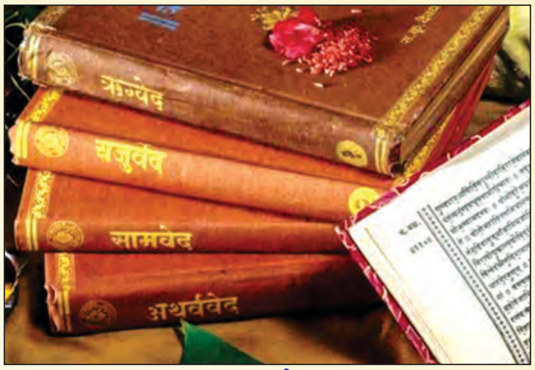

चार वेद

वेदों के छः अंग हैं जिन्हें वेदांग कहते हैं। इनमें से प्रथम है शिक्षा। इन ग्रन्थों का उद्देश्य है वेदों के मन्त्रों का उचित उच्चारण करना सिखाना। वेदपाठ तीन स्वरों से किया जाता है उदात्त (ऊंचा स्वर), अनुदात्त (निम्न स्वर) और स्वरित (मध्यम स्वर)। वेद के किसी भी मन्त्र में कौनसा वर्ण कैसे स्वर में बोला जाएगा, इस को 'शिक्षा' कहा गया है। उच्चारण में कण्ठ, तालु, मूर्धा, दंत और ओष्ठ इन पांच स्थानों (अंगों) का उपयोग होता है। यह ज्ञान भी शिक्षा का ही भाग है।

ऋग्वेद के लिए पाणिनीय शिक्षा, कृष्ण यजुर्वेद के लिए व्यास और शुक्ल यजुर्वेद के लिए याज्ञवल्क्य शिक्षा, सामवेद के लिए गौतम, लोमश और नारदीय शिक्षा तथा अथर्ववेद के लिए माण्डुकीय शिक्षा प्रमुख ग्रन्थ हैं। अन्य ऋषियों ने भी शिक्षाग्रन्थों की रचना की है।

कल्प

कल्प दूसरा वेदांग है। वैदिक कर्मकाण्ड को सूत्र रूप में बताने वाले ग्रन्थ कल्प कहलाते हैं। इनका उद्देश्य जानकारी को संक्षिप्त किन्तु मूल प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करना है। ये चार विभाग में विभक्त हैं –

१. श्रोत सूत्र (दैनिक व विशिष्ट यज्ञों का वर्णन)

२. गृह्य सूत्र (जन्म से मृत्यु पर्यन्त संस्कारों व पंच महायज्ञों का वर्णन)

३. धर्म सूत्र (वर्ण, आश्रम, राजा व नागरिकों के कर्तव्य आदि का वर्णन)

४. शुल्वसूत्र (यज्ञ कुण्डों की रचना का विधान)

शुल्व सूत्र के आधार पर आधुनिक रेखागणित बना है। शुल्व अर्थात् सुतली नापने की रस्सी। पाइथागोरस के प्रमेय के नाम से प्रसिद्ध सूत्र को ऋषि बोधायन ने हजारों वर्ष पूर्व ही खोज लिया था।

व्याकरण

शब्दों के वास्तविक अर्थ, शुद्ध प्रयोग, ठीक से पढ़ने का विज्ञान व्याकरण है। इसे शब्दानुशासन भी कहते हैं। व्याकरण का सर्वप्रथम उपदेश इन्द्र द्वारा दिया गया, ऐसा कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता का प्रमाण है। वर्तमान में महर्षि पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी को व्याकरण का प्रमुख, पूर्ण और सुव्यवस्थित ग्रन्थ माना जाता है। महर्षि कात्यायन ने इस पर वार्तिक और महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना कर पाणिनीय व्याकरण को और सरलता से समझाया है। मूलतः पाणिनीय व्याकरण जिन चौदह सूत्रों पर आधारित है, वे माहेश्वर सूत्र कहलाते हैं जिनकी उत्पत्ति नृत्य के समापन पर भगवान शंकर द्वारा चौदह बार डमरू बजाने से हुई, ऐसी मान्यता है।

निरुक्त

वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थात् शब्द मूलरूप से कैसे बने, यह जानना निरुक्त है। इससे वेदों का सही अर्थ समझने में सहायता मिलती है। इस ग्रन्थ की रचना महर्षि यास्क ने की थी। इसे हम वैदिक शब्दकोश के रूप में भी समझ सकते हैं। वेदों के भाष्यकर्ता सायणाचार्य ने निरुक्त ग्रन्थों को परिभाषित करते हुए इसे अर्थज्ञान में निरपेक्षतापूर्वक पदों की व्युत्पत्ति बताने वाला ग्रन्थ कहा है। प्रजापति कश्यप इसके आदि आचार्य हैं। इनके द्वारा रचित निघण्टु ग्रन्थ का ही महर्षि यास्क द्वारा किया गया भाष्य निरुक्त है।

संगठन मंत्र

ऋग्वेद का अंतिम सूक्त, जिसे संज्ञान सूक्त या सौमनस्य सूक्त भी कहते हैं, सामाजिक सद्भाव को प्रेरित करने वाला है तथा आपस में मिलजुल कर रहने के श्रेष्ठ मानव-धर्म को सिखाता है। ऋषि कहते हैं-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते॥ (ऋग्वेद १०/१९१/२)

हे मनुष्यो ! सब मिल कर चलो, मिल कर बोलो और मिलकर मानसिक उन्नति करो। तुम्हारे मन मिले हुये, एकता के भाव से युक्त हों। जिस प्रकार पूर्व विद्वान पुरुषों ने अपने-अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करके विचारपूर्वक परमेश्वर की उपासना की, वैसे ही वर्तमान में भी करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
(ऋग्वेद १०/१९१/३)

सबके विचार समान हों, सभा-समितियां, सामूहिक जीवन की गतिविधियाँ समान हों। मन समान हों और चित्त सहयोगी और समान हो। परमेश्वर सबको समान विचारों वाले और समान वस्तुओं और पदार्थों से युक्त तथा समान यज्ञीय भावना से ओत-प्रोत करे।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ (ऋग्वेद १०/१९१/४)

सबकी संकल्पशक्ति और हृदय समान हों। सबके मन समान हों, जिससे सब परस्पर मिल कर सुखपूर्वक रहें।

श्रीरामचरितमानस प्रसंग

श्रीरामचरितमानस केवल कविता नहीं है। इसके प्रत्येक वर्णन में धर्मः, संस्कृति, सदाचार, नीति आदि जीवनोपयोगी विषय संयोजित हैं। शरद ऋतु का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने यहाँ नीति संदेश दिया है। श्रीरामचरितमानस के किष्किंधा- काण्ड में भगवान श्रीराम लक्ष्मण को बता रहे हैं –

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभी को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद्-ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)।।

गोस्वामी तुलसीदास

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥

न कीचड़ है न धूल; इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा।

बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं।

प्रकृति के प्रति मातृभाव

अथर्ववेद में कहा गया है, **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'** धरती हमारी माँ है, हम इसके पुत्र हैं। राष्ट्रदेव सबसे बड़ा देवता है। राष्ट्र धर्म माने, राष्ट्र के प्रति हम सबके कर्तव्य, हमारे दायित्वों को निभाना सबसे बड़ा धर्म है। अन्याय व अधर्म करना जितना पाप है उतना ही पाप अत्याचार को सहना भी है। राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता, श्रद्धा व स्वाभिमान सभी में होना चाहिए। आदिकाल से ही पृथ्वी को मातृभूमि की संज्ञा दी गई है। भारतीय तत्त्वचिन्तन में पृथ्वी माता के समान आदरणीय बताई गई है। हम प्रकृति से जीवनभर कुछ लेते रहते हैं, अतः उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखना भारतीय जीवन दृष्टि है। गौ, गंगा, तुलसी को मातृवत् मानना, हमारी जीवन शैली है। शान्ति पाठ में भी प्रकृति से हमारा सम्बन्ध होने के कारण हम सभी तत्त्वों की शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता

मन वचन और कर्म पहले सत्य से संस्कारिये।
तब सुमंगल कर्म कर वाणी शुभा उच्चारिये।
श्रीकृष्ण गीता में यही उपदेश देते हैं हमें।
आओ, गीता की उसी हम दिव्यवाणी में रमें॥

वाणी मनुष्य को मिला ईश्वर का अनूठा वरदान है। वाणी का दुरुपयोग कई बार शाप भी बन जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने वाणी के समुचित प्रयोग को वाङमयी तप या वाणी की तपस्या कहा है वाणी को संयत और उन्नत बनाने के लिए वाणी का तप बतलाया गया है –

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥१७/१५॥

जो उद्वेग न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है – वही वाणी सम्बन्धी तप है।

अभ्यास –

अभ्यास का तात्पर्य किसी कार्य को बारम्बार करना है। 'मन' की चंचलता बच्चे से बूढ़े तक सभी की सबसे बड़ी समस्या है। इस चुनौती की अचूक औषधि स्वरूप श्रीगीताजी में 'अभ्यास और वैराग्य' को बताया है। जब सबसे बड़ी समस्या का यह समाधान है तब अन्य समस्याओं का समाधान होना तो निश्चित है। श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥६/३५॥

अर्थात् हे महाबाहो! निःसन्देह मन चंचल (और) कठिनता से वश में होने वाला है; परंतु हे कुन्तिपुत्र अर्जुन! (यह) अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

इससे पहले के श्लोक में पूछे गए अर्जुन के प्रश्न को भी समझ लेना चाहिए :-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिवसुदुष्करम् ॥६/३४॥

अर्थात् हे कृष्ण! (यह) मन बड़ा चंचल, मथने वाले स्वभाव का, बड़ा दृढ़ (और) बलवान है। उसको वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। अर्जुन के इस प्रश्न में छिपे उसके अद्भुत पराक्रम की बात करते हैं। अर्जुन के कथन से यह स्पष्ट है कि वह वायु को भी रोकने में समर्थ था जिसकी कल्पना आज का भौतिक विज्ञान नहीं कर पाया है।

पुनः अभ्यास की चर्चा करते हैं। श्रीगीताजी ने अभ्यास को विभिन्न सन्दर्भ में समाधानस्वरूप माना है। जैसे-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्ययाति पार्थानुचिन्तयन्॥ (८/८)॥

हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न भटकने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ (१२/९)

यदि तू मन को मुझ में अचल स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप (भगवान् के नाम और गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा श्वास के द्वारा जप और भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रों का पठन-पाठन इत्यादि चेष्टाएँ भगत्प्राप्ति के लिये बारम्बार करने का नाम 'अभ्यास' है।) योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिये इच्छा कर।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥ (१२/१०)

यदि तू उपर्युक्त अभ्यास में भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करने के ही परायण (स्वार्थ को त्यागकर तथा परमेश्वर को ही परम आश्रय और परमगति समझकर, निष्काम प्रेमभाव से मन, वाणी और शरीर द्वारा परमेश्वर के ही लिये यज्ञ, दान और तपादि सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों के करने का नाम 'भगवदर्थ कर्म करने के परायण होना' है।) हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ (१२/१२)

मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है; ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग (केवल भगवदर्थ कर्म करने वाले पुरुष का भगवान् में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवान् का चिन्तन भी बना रहता है, इसलिये ध्यान से 'कर्मफल का त्याग' श्रेष्ठ कहा है।) श्रेष्ठ है; क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दु:खान्तं च निगच्छति।। (१८/३६)

हे भरतश्रेष्ठ! अब तीन प्रकार के सुख को भी तू मझसे सुन। जिस सुख में साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और जिससे दुखों के अन्त को प्राप्त हो जाता है।

श्रीकृष्ण का अभ्यास पर विशेष आग्रह है। वे कर्म और परिश्रम के पक्षधर हैं। सफलता का कोई सरल या छोटा रास्ता नहीं होता हैं।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा

गुरुकुल का अर्थ है, गुरु का परिवार। गुरु का परिवार जिस घर में रहता था, वह आश्रम कहलाता था। सभी ज्ञानार्थी पूर्ण समय इसी आश्रम में गुरु के परिवार के सदस्य बनकर रहते थे और गुरु उन्हें ज्ञान देते थे। ज्ञानार्थी पाँच वर्ष की आयु पूर्णकर घर से गुरुकुल में आ जाते थे और शिक्षा पूर्ण होने पर ही घर लौटते थे। विशेष विषयों की उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले गुरुकुल का नाम विद्यापीठ था।

इससे पहले हमने वैदिक काल, रामायण काल व महाभारत काल के गुरुकुलों का परिचय प्राप्त किया था, अब हम ईसा पूर्व १००० वर्ष से लेकर ईसा पूर्व ५०० वर्ष के विद्यापीठों की जानकारी करेंगे।

- **काशी विद्यापीठ –**

वाराणसी में भगवती गंगा के किनारे स्थित इस विद्यापीठ में ई. पूर्व १००० से आज तक शिक्षा दी जा रही है। सम्पूर्ण काशी नगरी को एक विद्यापीठ की संज्ञा दी गई है। यहाँ वैदिक धर्म की विभिन्न शाखाओं की स्थापना हुई है।

काशी विद्यापीठ की प्रमुख जानकारियाँ –

१. कोशीयजातक एवं वितिरीजातक के अनुसार यहाँ विद्वान आचार्य ३ वेद व १८ शिल्प सिखाते थे।
२. ब्रह्मज्ञानी राजा अजातशत्रु के काल में उपनिषद्ज्ञान हेतु यह विद्यापीठ सुविख्यात था।
३. बुद्ध के काल में पूर्वी भारत का यह सबसे बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र था, इसलिए बुद्ध द्वारा अपने मत का प्रचार सारनाथ से किया गया था।
४. वैदिक धर्म की शिक्षा हेतु काशी शताब्दियों तक सर्वप्रथम रही है।
५. आद्यशंकराचार्य को भी अपने सिद्धान्तों की पुष्टि हेतु काशी के विद्वानों की सहमति लेनी पड़ी थी।
६. सन् १२०० ई० से काशी पर हुए मुस्लिम आक्रमणों का परिणाम-काशी की शिक्षा पर बहुत विपरीत हुआ।

- **तक्षशिला विश्वविद्यालय –**

तक्षशिला विश्वविद्यालय गंधार की राजधानी लाहौर से ४० मील उत्तर-पश्चिम में स्थित था। भारत का प्राचीनतम विश्वविद्यालय ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ईसा बाद की पाँचवी सदी तक चलता था। छठी शताब्दी में वैयाकरण पाणिनि, अर्थशास्त्री चाणक्य व राजवैद्य जीवक की शिक्षा इसी तक्षशिला विश्वविद्यालय में हुई थी।

तक्षशिला विश्वविद्यालय की प्रमुख जानकारियाँ –

१. वेदादि विषयों के अतिरिक्त – इतिहास, पुराण, गणित, नक्षत्र विद्या, भूतविद्या, शरीर विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा १८ शिल्पों का समावेश था।

२. वैद्य विद्या, युद्ध कला तथा स्थापत्य का गहन अध्ययन होता था, जिससे देश-विदेश में कीर्ति फैली। सिकन्दर अपने साथ यहाँ के अच्छे शिक्षक यूनान ले गया था।

३. सभी वर्णों व मतों के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। विभिन्न राष्ट्रों के १०३ राजकुमार समान रूप से शिक्षा पाते थे। धनुर्विद्या व युद्धकला यहाँ का वैशिष्ट्य था। रथ, घुड़सवारी, घोड़े पर बैठे-बैठे बाण चलाना, पर्शियनों ने भारतीयों से सीखा (महासुत्त व सोमजातक में इसका उल्लेख है।)

४. अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण विदेशी आक्रान्ताओं के निर्मम प्रहार इस पर होते रहे। ईस्वी पूर्व छठी शताब्दी में - पारसियों के, ईसा पूर्व दूसरी में यूनानियों के, ई.पू. पहली शताब्दी में शकों व कुषाणों के द्वारा अधिकृत हुई। ५८० ई. में हूणों का बर्बर आक्रमण हुआ जिससे इसकी गुरुता विलुप्त हो गई।

५. लगभग १२०० वर्ष तक तक्षशिला विश्वविद्यालय की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में रही।

- **गुणशीला विद्यापीठ -**

गुणशीला विद्यापीठ - ईसा पूर्व ६ठी शताब्दी में राजगृह नगरी में प्रख्यात जैन विद्यापीठ था। बालकों व बालिकाओं दोनों की शिक्षा दी जाती थी। मुख्य रूप से यह विद्यापीठ स्त्री शिक्षा का पुरस्कर्ता, ६४ कलाओं की शिक्षा देने वाला था।

गुणशीला विद्यापीठ की प्रमुख जानकारियाँ -

१. यह विद्यापीठ स्त्री शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था, यह ६४ कलाओं की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था।

२. यहाँ के शिक्षाक्रम में बहुश्रुतता व व्यवहारकुशलता का सुन्दर समन्वय था। इस विद्यापीठ का नाम 'गुणशीला' यथार्थ व सार्थक रखा गया था।

- **कुण्डिनपुर विद्यापीठ -**

यह विद्यापीठ प्राचीन वैशाली नगर में ईसा पूर्व ५०० में अस्तित्व में आया था। भगवान महावीर की शिक्षा (कल्पसूत्र) यहीं पर हुई थी। यहाँ व्यायाम शास्त्र की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी।

एकात्ममानव दर्शन

सांस्कृतिक राष्ट्र की अवधारणा -

पश्चिमी जगत में राष्ट्रवाद तो पनपा, परन्तु उनकी राष्ट्र की अवधारणा हमारे राष्ट्र की अवधारणा से भिन्न है। पश्चिमी राष्ट्र राजनैतिक व भौगोलिक इकाई मात्र हैं, जबकि भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। दीनदयालजी ने बताया कि हमारे यहाँ स्वराज्य का स्वसंस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वराज्य तभी सार्थक होता है, जब वह अपनी संस्कृति का साधन बनता है। इसीलिए भारत सांस्कृतिक राष्ट्र है, जबकि पश्चिम का राष्ट्र केवल राज्य है। वहाँ राष्ट्र व राज्य एक ही इकाई है परन्तु भारत में राष्ट्र व राज्य दो भिन्न इकाइयाँ हैं। पश्चिम में राज्य के जाने पर राष्ट्र भी चला जाता है। हमारे यहाँ राज्य के जाने पर भी राष्ट्र बना रहता है।

राष्ट्र सांस्कृतिक इकाई होने का कारण, राष्ट्र के मूल में हमारा जीवन दर्शन है। भारत का भूभाग, भारत की प्रजा और उसका जीवन दर्शन ये तीनों मिलकर राष्ट्र बनता है। इन तीनों में जीवन दर्शन सबसे मुख्य है। भूभाग तो घटता-बढ़ता

रहता है। भूभाग के चले जाने पर राज्य तो चला जाता है परन्तु जीवन दर्शन के रहते राष्ट्र बना रहता है। पण्डितजी कहते थे कि पश्चिम राजनैतिक इकाई व सांस्कृतिक इकाई को एक ही मानता है, जबकि ये एक नहीं है इन्हें एक मानने से ही सारी भ्रान्तियाँ निर्माण होती हैं। भारत की प्रजा इस हिन्दू राष्ट्र को मात्र भू-भाग नहीं मानती, अपितु इसे अपनी मातृभूमि मानती है। माता और पुत्र का नाता ही हमें हमारे राष्ट्र से बाँधे रखता है।

अपनी संस्कृति

('हिन्दू' नामक काव्य से)

अपनी संस्कृति का अभिमान,
करो सदा हिंदू-सन्तान।
सब आदर्शों की वह खान,
नररत्नत्व करेगी दान।
अपनी चिरसंस्कृति की मूर्ति,
है मनुष्यता की परिपूर्ति।
प्राण रूप उसका पुरुषार्थ,
साधन करता है परमार्थ॥
युग-युग संचित संस्कार,
ऋषि-मुनियों के उच्च विचार।
धीरों, वीरों के व्यवहार,
है निज-संस्कृति के शृंगार॥

'राष्ट्रकवि' मैथिलीशरण गुप्त

६. हमारी वैज्ञानिक परम्परा

सघन ध्यान एकाग्र ज्योति से, किये गहनतम अनुसंधान
कला शिल्प संगीत रसायन, गणित अणु आयुर्विज्ञान
सभी विधाएँ आलोकित कर महिमामय भूलोक वरा
गौरवशाली परम्परा॥

भारतीय कालगणना

काल की सबसे छोटी एवं सबसे बड़ी इकाई की जानकारी हमें अत्यन्त आश्चर्यचकित कर देने वाली है। आश्चर्य इस बात का है कि जिसने भी समय की इस प्रकार की गणना की उसने यह काम किस प्रकार किया होगा। उसने कितना परिश्रम किया होगा? किस प्रकार की साधना की होगी? वह कितना बुद्धिमान होगा?

हजारों वर्ष पूर्व भारत के वैज्ञानिक ऋषियों ने यह सब किया। यहाँ दी हुई जानकारी श्रीमद्भागवत महापुराण में दी हुई है। श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना भगवान वेदव्यास ने की। परन्तु वे श्री श्रीमद्भागवत पुराण के शोधकर्ता नहीं हैं। उनसे भी पूर्व के वैज्ञानिकों ने इसका संकलन किया। वेदव्यास आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व हुए। उनसे भी पूर्व ये वैज्ञानिक ऋषि हुए। इसका अर्थ यह है कि यह जानकारी हजारों वर्ष पुरानी है।

हमने सृष्टि के सृजनकर्ता ब्रह्मा जी की आयु के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की है। अब हम श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर की जानकारी प्राप्त करेंगे –

हम कितने वर्ष के हुए हैं –

१. हम श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर में जी रहे हैं। एक मन्वन्तर में ७१ महायुग होते हैं। अभी ७१ में से २७ महायुग बीत चुके हैं। वर्तमान में २८वाँ महायुग चल रहा है।

२. हम श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के अठाईसवें महायुग में जी रहे हैं। इस महायुग के तीन युग अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग बीत चुके हैं। अभी कलियुग चल रहा है। इस अठाईसवें कलियुग के पाँच हजार एक सौ पच्चीस वर्ष बीत चुके हैं। अभी पाँच हजार एक सौ छब्बीसवाँ वर्ष चल रहा है। (ईस्वी सन् २०२४)

३. श्वेतवाराह कल्प की सृष्टि का सृजन हुए ६ मन्वन्तर बीत गये अर्थात् ३०,६७,२०,००० (१ मन्वन्तर के वर्ष) x ६ = १,८४,०३,२०,००० (एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हजार) वर्ष।

६ मन्वन्तरों की ७ सन्धियाँ होती हैं।

अर्थात् १७,२८,००० x ७ = १,२०,९६,००० (एक करोड़ बीस लाख छियानवे हजार) वर्ष।

इस प्रकार इस समय श्वेतवाराह कल्प चल रहा है और उसके एक करोड़ बीस लाख छियानवे हजार वर्ष बीत चुके हैं।

हमारा संकल्प

हमारे देश में प्रत्येक शुभ कार्य से पहले पुरोहित यजमान को विधिवत संकल्प करवाते हैं। यह संकल्प संस्कृत भाषा में है। अनेक बार न तो पुरोहित ठीक से बोल पाते हैं और न यजमान उसे सही दोहरा पाता है, परिणामस्वरूप दोनों को

उच्चारण दोष लगता है। संकल्प का अर्थ जानना तो दूर की बात हो जाती है। अत: यहाँ पर संकल्प को अर्थसहित दिया जा रहा है। आपसे अपेक्षा है कि जब भी आप संकल्प लें तो शुद्ध उच्चारण करें एवं अर्थ समझें।

संकल्प का रहस्य –

अब चर्चा प्रारम्भ होती है, समय की अर्थात् जब हम संकल्प कर रहे हैं तब केवल किसी कैलेण्डर वर्ष के किसी महीने की कोई दिनाँक या तिथि नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक का हमारा जो इतिहास है, उसका भी हम संकल्प में स्मरण करते हैं।

अद्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे – सृष्टि के रचनाकार ब्रह्माजी हैं। ब्रह्मा का जब एक दिन शुरू होता है तब सृष्टि का सृजन होता है। दिन पूरा होकर जब रात्रि शुरू होती है, तब प्रलय होता है। ब्रह्मा का दिन-रात हमारे दिन-रात जितना छोटा नहीं होता। आपने कालगणना में युग, मन्वन्तर, कल्प आदि नाम पढ़े हैं और उनका मान भी जाना है। ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् एक कल्प और एक कल्प होता है चौदह मन्वन्तर के बराबर। दो कल्पों को कहते हैं महाकल्प। महाकल्प का अर्थ है ब्रह्मा का एक दिन-रात। ब्रह्मा के तीस दिन बराबर एक माह और तीन सौ साठ दिन अर्थात् ३६० महाकल्पों का ब्रह्मा का एक वर्ष, ५० वर्षों का एक परार्द्ध। ब्रह्मा की कुल आयु २ परार्द्ध अर्थात् १०० वर्ष। वर्तमान में ब्रह्मा की आयु के ५० वर्ष पूर्ण होकर दूसरा परार्द्ध चल रहा है। अत: 'अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे' का अर्थ हुआ 'आज ब्रह्मा के द्वितीय परार्द्ध में' हम जी रहे हैं।

श्रीश्वेतवाराहकल्पे – ब्रह्मा की आयु का एक दिन अर्थात् कल्प। २ कल्प का एक महाकल्प, कल्प कुल ३० हैं। इस सृष्टि की आयु के अब तक २५ कल्प बीत चुके हैं और २६वाँ कल्प चल रहा है। २६वें कल्प का नाम 'श्वेतवाराह कल्प' है। अत: श्रीश्वेतवाराह कल्पे का अर्थ है, 'सृष्टि के श्वेतवाराह कल्प में' हम जी रहे हैं।

वैवस्वते मन्वन्तरे – १४ मन्वन्तरों के बराबर एक कल्प होता है। मन्वन्तर ७१ महायुग अथवा चतुर्युगी के बराबर होता है। ऐसे कुल १४ मन्वन्तर होते हैं। इस सृष्टि चक्र में अब तक ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं और इस समय सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है, जिसका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। अर्थात् हम वैवस्वत मन्वन्तर में जी रहे हैं।

अष्टाविंशतितमे कलियुगे – इस समय 'कलियुग' है। चारों युगों को मिलाने पर एक महायुग होता है। जैसे सप्ताह के वार बार-बार आते हैं, महीने बार-बार आते हैं, वैसे ही युग भी बार-बार आते हैं। इस समय जो कलियुग चल रहा है, वह अट्ठाईसवाँ कलियुग है। यही अर्थ है 'अष्टाविंशतितमेकलियुगे' का, अर्थात् हम अट्ठाइसवें कलियुग में संकल्प कर रहे हैं।

कलिप्रथम चरणे – प्रत्येक कलियुग ४,३२,००० (चार लाख बत्तीस हजार) वर्ष का होता है। प्रत्येक कलियुग के १,०८,००० (एक लाख आठ हजार) वर्ष के चार चरण होते हैं। इस अट्ठाइसवें कलियुग का यह पहला चरण चल रहा है। इस पहले चरण में अब तक ५,१२५ वर्ष पूर्ण होकर ५,१२६ वाँ वर्ष चल रहा है, जिसे युगाब्द कहते हैं। (यह गणना पुस्तक लेखन के समय चल रहे विक्रम संवत् २०८१ की वर्ष प्रतिपदा के अनुसार है। बाद की हर वर्ष प्रतिपदा से युगाब्द में एक वर्ष बढ़ाते जाना होगा।) अत: 'कलिप्रथम चरणे' का अर्थ हुआ, इस सृष्टिचक्र के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण में संकल्प किया जा रहा है।

बौद्धावतारे – भगवान विष्णु बार-बार इस पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। भगवान का अवतार लेने का उद्देश्य वे स्वयं गीता में कहते हैं कि जब-जब पृथ्वी पर आतंक बढ़ जाता है, संस्कार समाप्त हो जाते हैं, दुष्टों का प्रभाव बढ़ने लगता है, धर्म

की ग्लानि होने लगती है और सर्वत्र अधर्म का बोलबाला होने लगता है, तब-तब मैं धर्म की संस्थापना करने के लिए, दुष्टों का संहार करते हुए सज्जनों की रक्षा करने के लिए इस धरा पर आता हूँ। अभी तक भगवान नौ बार अवतार ले चुके हैं - १. मत्स्य अवतार, २. कूर्म अवतार, ३. वराह अवतार, ४. नरसिंह अवतार, ५. वामन अवतार, ६. परशुराम अवतार, ७. रामावतार, ८. कृष्णावतार, ९. बुद्धावतार।

दसवाँ अवतार कल्कि अवतार भविष्य में होगा। वर्तमान में बौद्धावतार अंतिम अवतार है। अत: हम भगवान के बुद्ध अवतार के काल में संकल्प कर रहे हैं। दशावतारों के नाम क्रम से याद रखने के लिए यह श्लोक सीख लीजिए–

मात्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनं।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं नमाम्यहम्॥

(श्लोक में दो बार राम आया है पहला परशुराम के लिए तथा दूसरा श्रीराम के लिए है।)

संकल्प के शेष भाग का अर्थ हम अगली कक्षा में पढ़ेंगे।

भारतीय ज्योतिष

नक्षत्र माला

सूर्य, चन्द्र एवं अन्य ग्रहों की गति करते हुए स्थिति किस समय खगोल में ग्रह पथ पर कहाँ है, यह जानने के लिए उन विशिष्ट तारा समूहों को जो अपना स्थान नहीं बदलते, 'नक्षत्र' के रूप में पहचाना जाता है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्रियों ने प्राचीनकाल से ही इन २७ नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। राशियों की भाँति नक्षत्र भी पूर्व से पश्चिम की ओर चौड़े पट्टे जैसे ग्रह मार्ग पर स्थित हैं। कुछ नक्षत्र जैसे हस्त, स्वाति, मूल, श्रवण आदि ग्रह पथ से अलग थोड़ी दूर पर हैं। शेष ग्रहमार्ग के निकट ही हैं।

२७ नक्षत्रों के नाम क्रमानुसार हैं -

(१)	अश्विनी	(२)	भरणी	(३)	कृतिका
(४)	रोहिणी	(५)	मृगशिरा (मृगशीर्ष)	(६)	आर्द्रा
(७)	पुनर्वसु	(८)	पुष्य	(९)	अश्लेषा
(१०)	मघा	(११)	पूर्वाफाल्गुनी	(१२)	उत्तरा फाल्गुनी
(१३)	हस्त	(१४)	चित्रा	(१५)	स्वाति
(१६)	विशाखा	(१७)	अनुराधा	(१८)	ज्येष्ठा
(१९)	मूल	(२०)	पूर्वाषाढा	(२१)	उत्तराषाढा
(२२)	श्रवण	(२३)	धनिष्ठा	(२४)	शतभिषा
(२५)	पूर्वाभाद्रपद	(२६)	उत्तरा भाद्रपद	(२७)	रेवती

इनके अतिरिक्त 'अभिजित' २८वाँ नक्षत्र माना जाता है जो श्रवण नक्षत्र के उत्तर में ग्रह मार्ग से थोड़ा दूर है।

फलित ज्योतिष अर्थात् जन्म पत्रिका के आधार पर जीवन पर होने वाले शुभ-अशुभ फलों की भविष्यवाणी में नक्षत्रों, ग्रहों, राशियों का बड़ा महत्त्व है।

भारत की वैज्ञानिक दृष्टि

भारत में विज्ञान को अध्यात्म के साथ जोड़कर रखा गया है या यह भी कह सकते हैं कि अध्यात्म और विज्ञान का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता के सातवें अध्याय का नाम ही ज्ञान-विज्ञान योग है। भारत में हजारों वर्ष पूर्व से विद्या के क्षेत्र में स्वतन्त्रता रही है। यहाँ सबको अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता थी। भारत में ज्ञान का भण्डार वेद और उसके द्रष्टा ऋषियों के प्रति सबके अन्तर्मन में श्रद्धा का भाव रहा है परन्तु इनको न मानने वाले चार्वाक को भी दार्शनिक ऋषि का स्थान दिया गया है।

इसका दूसरा उदाहरण मुण्डकोपनिषद में आता है। ऋषि शौनक एक बड़े गुरुकुल के अधिष्ठाता महर्षि अंगिरा के पास जाते हैं तथा उनसे पूछते हैं कि किस तत्त्व को जानने से सब कुछ जान लिया जाता है? इसके उत्तर में महर्षि अंगिरा कहते हैं कि दो विद्याएँ हैं – एक 'परा विद्या' अर्थात् जिससे परम तत्त्व का ज्ञान होता है, दूसरी 'अपरा विद्या' जिससे लौकिक व पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है, परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से अपरा विद्या से परा विद्या श्रेष्ठ है। हमारे देश में ज्ञान को महत्त्व देते हुए विज्ञान का प्रयोग लोक कल्याण के लिए किया गया है।

रसायन शास्त्र में भारत की उपलब्धि

इस शास्त्र का सम्बन्ध धातुविज्ञान और चिकित्साविज्ञान से है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय 'हिन्दू केमिस्ट्री' ग्रन्थ लिखकर कुछ समय से लुप्त शास्त्र को फिर से लोगों के सामने लाए। खनिजों, पौधों, कृषि, धातु आदि के द्वारा विधिवत वस्तुओं का उत्पादन, विभिन्न वस्तुओं का निर्माण व परस्पर परिवर्तन तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक औषधियों का निर्माण होता है। पूर्व काल में भी भारत में अनेक रसायनशास्त्री हुए हैं। उनमें से कुछ के नाम व कृतियाँ निम्नानुसार हैं–

१.	नागार्जुन	–	रस रत्नाकर, रसेन्द्रमंगल
२.	वाग्भट्ट	–	रसरत्न समुच्चय
३.	गोविन्दाचार्य	–	रसावरण
४.	यशोधर	–	रसप्रकाश सुधाकर
५.	रामचंद्र	–	रसेंद्र चिंतामणि
६.	सोमदेव	–	रसेंद्र चूड़ामणि

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक

महर्षि कणाद – परमाणुवाद के प्रवर्तक हैं। परमाणु वे नित्य तत्त्व हैं जिनसे इस जगत का निर्माण हुआ है। ये सूक्ष्मतम तथा अविभाज्य हैं, शाश्वत और अविनाशी हैं। कणाद के 'परमाणु' की ये विशेषताएँ आधुनिक विज्ञान के 'एटम' के समकक्ष हैं। कणाद ने बताया कि एक परमाणु अन्तर्निहित आवेश के अधीन किसी अन्य परमाणु से संयोग कर व्दिकों (अणु) और तीन परमाणु मिलकर 'त्रसेरणु' बनाते हैं। इस प्रकार विविध प्राथमिक पदार्थों का सृजन होता है। यह आश्चर्य और गौरवास्पद विषय है कि जिस परमाणवीय संगठन संकल्पना को १९वीं शताब्दी में जॉन डाल्टन के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई, उन्हें सैकड़ों वर्ष पूर्व ही परमाणुवाद के उपदेशक ऋषि कणाद ने खोज लिया था। ये उलूक मुनि के पुत्र थे और इनका काल ईसापूर्व छठी शताब्दी में माना जाता है।

वराहमिहिर – विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक वराहमिहिर आर्यभट्ट के समकालीन महान ज्योतिर्विद थे। इनके पिता का नाम आदित्य दास और माता का नाम सत्यवती था। ये छठी शताब्दी में उज्जैन के निवासी थे। ज्योतिष शास्त्र के गणित और फलित दोनों विधाओं में इनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं लेकिन 'पञ्च सिद्धांतिका' इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह सन् ५०५ में रचित माना जाता है। इनका निधन ५८७ ई. में हुआ। बृहज्जातक, लघुजातक, विवाह पटल और योगयात्रा इनके फलित ज्योतिष के ग्रन्थ हैं। पौधों के रोगों व उपचार पर भी वराहमिहिर ने प्रकाश डाला है।

वराहमिहिर

आर्यभट्ट – आर्यभट्ट (प्रथम) भारतीय ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक हैं। इनका जन्म ४७६ ईस्वी में कुसुमपुर (पटना) में हुआ था। गणितीय सिद्धान्तों का स्पष्ट और सटीक प्रतिपादन करने में इनके ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक हैं। मात्र २३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने ग्रन्थ 'आर्यभट्टीय' की रचना की थी। यह ग्रन्थ गीतिकापाद या दशगीतिका, गणित पाद, कालक्रिया पाद और गोलपाद इन चार खण्डों में विभक्त हैं। आर्यभट्ट ने ही सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के कारण के रूप में चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने और सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आ जाने के सिद्धान्त को सिद्ध किया। आर्यभट्ट ने ही पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमते हुए, सूर्य की परिक्रमा करने का ज्ञान दिया। चन्द्रमा, सूर्य के प्रकाश से चमकता है, इस तथ्य को भी आर्यभट्ट ने समझाया। आर्यभट्ट ने एक वर्ष की अवधि ३६५.२५८६८०५ दिन बतायी, टालेमी ने इसे ३६५.२६३१५७९ दिन बताया। वर्तमान में संशोधित और मान्य अवधि ३६५.२५६३६०४ आर्यभट्ट की बतायी अवधि के अधिक निकट है। इनकी ३४ श्लोकों की एक कृति 'आर्यभट्ट सिद्धान्त खगोल शास्त्र' सातवीं शताब्दी तक उपलब्ध थी उसके बाद अप्राप्य हो गई। एक अनुमान के अनुसार सन् ५५० में ये विद्वान् गणिताचार्य दिवंगत हो गए। ईस्वी सन् ९५० में एक अन्य विद्वान ज्योतिर्विद भी आर्यभट्ट के नाम से हुए हैं।

नवीन भारतीय वैज्ञानिक

चन्द्रशेखर वेंकटरमन – वर्ष १९३० भारत के लिए अत्यन्त गौरवशाली था जब 'रमन प्रभाव' नाम से विख्यात खोज के लिए पहली बार किसी भारतीय वैज्ञानिक को नोबेल पुरस्कार मिला। 'पानी अथवा किसी द्रव से परावर्तित होता हुआ प्रकाश अपने मूल रंगों के अतिरिक्त अपने साथ सर्वथा नए रंगों का समूह भी ले आता है। उस द्रव की कुछ विशिष्टताओं के कारण ऐसा होता है।' भौतिकशास्त्र में यह सिद्धान्त 'रमन प्रभाव' कहलाता है। तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली में ७

चन्द्रशेखर वेंकटरमन

नवम्बर १८८८ को जन्मे चन्द्रशेखर वेंकटरमन १९०४ में मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज से स्वर्णपदक प्राप्त कर बी.ए. पूरा किया और १८ वर्ष की आयु में ही वहाँ से एम.ए. कर लिया। सर आशुतोष मुखर्जी को अपनी प्रतिभा से प्रभावित कर वे 'इण्डियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साईंस' नामक विज्ञान संस्थान की प्रयोगशाला में काम करने लगे। वहीं उन्होंने 'रमनप्रभाव' की खोज की। आजीविका हेतु वे कोलकाता के डिप्टी अकाउन्टेन्ट जनरल के पद पर नौकरी करते। दिन में नौकरी, शाम से देर रात वैज्ञानिक अनुसंधान। रविवार को भी अवकाश नहीं। प्रकाश के प्रकीर्णन पर उनकी खोजें विश्वप्रसिद्ध हुई। अप्रैल १९३३ में वे 'इण्डियन इस्टीटूयूट ऑफ साईंस', बैंगलुरु के प्रथम निदेशक बने। सेवानिवृत्ति के बाद 'रमन शोध संस्थान' की स्थापना में जीवन की सारी अर्जित सम्पत्ति लगा दी। २१ नवम्बर १९७० को उन्होंने चिरविदा ली। ब्रिटिश सरकार ने १९२९ में उन्हें 'सर' और भारत सरकार ने १९५४ में 'भारतरत्न' से विभूषित किया।

डॉ. राजा रामन्ना

डॉ. राजा रामन्ना – डॉ. राजा रामन्ना भारत के जाने माने परमाणु वैज्ञानिक थे। उनका जन्म कर्नाटक के तुमकुर में २८ जनवरी १९२५ को हुआ था। भारत के प्रथम परमाणु परीक्षण के सूत्रधार के रूप में भारतीय वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्ताओं में आपका सम्मानजनक स्थान है। स्वदेशी परमाणु क्षमता प्राप्त करने के लिए भारतीय विज्ञान जगत उनका चिर ऋणी रहेगा। १९७४ के प्रथम पोकरण परमाणु परीक्षण के वे प्रमुख वैज्ञानिक थे। वे परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष और भाभा परमाणु शोध केन्द्र के निदेशक रहे। १९९० में वे केन्द्रीय रक्षा राज्य मंत्री व राज्यसभा सांसद भी रहे। उन्होंने रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में भी सेवाएँ दीं एवं राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार परिषद् के सदस्य रहे। भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री, पद्मभूषण और पद्म विभूषण सम्मानों से अलंकृत किया। डॉ. रामन्ना ने लंदन विश्वविद्यालय के किंग्स कॉलेज से १९५४ में परमाणु भौतिकी में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। परमाणु ईंधन चक्रों और रिएक्टर डिजाइनिंग में आपकी विशेषज्ञता थी। राजा रामन्ना की स्वदेश निष्ठा का यह एक उदाहरण है कि १९७८ में ईराक के तत्कालीन राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने ईराक के लिए परमाणु बम बनाने के लिए अपने देश में उच्च पद देने का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होंने स्पष्ट नकार दिया था। २४ सितम्बर २००४ को मुम्बई में ७९ वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया।

७. हमारा गौरवशाली अतीत

केसरी बाना सजाए वीर का श्रृंगार कर,
ले चले हम राष्ट्रनौका को भँवर से पारकर।

हमारे वीर योद्धा

१. **बप्पा रावल-** राजस्थान में मेवाड़ प्रदेश के गुहिल वंश के संस्थापक बप्पा रावल स्वधर्म के प्रखर प्रतापी-पराक्रमी राजा थे। ईसा की ८वीं शताब्दी में जब भारत पर अरबों के आक्रमण होने लगे तो दृढ़ता के साथ उनका सामना करके अरब प्रदेश तक उन्हें खदेड़कर विशाल भूभाग पर अपना शासन स्थापित किया। दीर्घकाल तक शासन करते हुए उन्होंने अनेक बार आक्रान्ताओं को परास्त किया।

२. **ललितादित्य-** ललितादित्य कश्मीर के महाराजा प्रतापादित्य के पुत्र, महान योद्धा और विजेता थे। उनका यशोगान कश्मीर के इतिहासकार कल्हण ने अपने ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' में भी किया है। उन्होंने अरब, तुर्क, तातार आदि मुस्लिम आक्रान्ताओं को न केवल पराजित किया अपितु ऐसा भगाया कि उन्होंने अगली तीन शताब्दियों तक कश्मीर की ओर आँख उठाकर भी देखने का साहस नहीं किया। उन्हें ललितादित्य 'मुक्तापीड़' कहा जाता था।

३. **हरि सिंह नलवा (१७९१ ई० से १८३७ ई० तक) –** वे राजा रणजीत सिंह की सेना, 'सिक्ख खालसा' फौज के कमाण्डर-इन-चीफ थे। उन्होंने कसूर, सियालकोट, अटक, मुल्तान, कश्मीर, पेशावर और जमर्रुद के युद्ध में सिक्खों को विजय दिलायी। उन्होंने सिक्ख साम्राज्य की सीमाएँ सिन्धु नदी के खैबर दर्रे के मुहाने तक पहुँचा दी थीं। उनके पिता का नाम गुरुदयाल सिंह उप्पल और माता का नाम धर्म कौर था। १८०४ ईस्वी में शिकार करते समय अपने पर हमला करने वाले बाघ को उन्होंने निहत्थे ही मार डाला था, इसलिए उन्हें 'बाघमार' भी कहा जाता है। उन्होंने अपने साहस और पराक्रम से अफगान पुरुषों को भी कुर्ता-पायजामा छुड़वाकर सलवार पहनने पर मजबूर कर दिया था।

सिक्ख साम्राज्य का उत्थान

महाराजा रणजीत सिंह

भारत में मुगल साम्राज्य के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण उत्तर भारत में सिक्ख साम्राज्य का उदय भी था। सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना का श्रेय श्रीगुरुनानक देव को है। उनके अनुयायी (शिष्य) सिक्ख कहलाते हैं। गुरुनानक देव के बाद क्रमशः अंगददेव और अमरदास दूसरे और तीसरे गुरु बने। गुरु रामदास चौथे गुरु बने। अमृत सरोवर बनाकर अमृतसर नगर की स्थापना की। गुरु अर्जुन देव पाँचवें गुरु हुए जिन्होंने आदि ग्रन्थ की रचना की थी। छठे गुरु हरगोविंद जी ने अकाल तख्त का निर्माण करवाया था। वे दो तलवार बाँधकर गद्दी पर बैठते थे। इन्होंने ही अमृतसर की किलेबन्दी भी करवाई थी। सिक्खों के सातवें गुरु हरराय और आठवें गुरु हरकिशन हुए। सिक्खों के नौवें गुरु तेग बहादुर हुए। इस्लाम स्वीकार करने के औरंगजेब के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के कारण दिल्ली के शीशगंज नामक स्थान पर उनका बलिदान हुआ। सिक्खों के अंतिम और १०वें गुरु गोविन्द सिंह जी हुए। इनका जन्म १६७५ ईस्वी में पटना (बिहार) में हुआ

था। गुरु गोविन्द सिंह ने ही धर्म की रक्षा के लिए खालसा पन्थ की स्थापना की। उन्होंने सभी सिक्खों को पाँच ककार (केश, कंघा, कृपाण, कच्छा और कड़ा) धारण करने और अपने नाम के अन्त में सिंह शब्द जोड़ने के लिए कहा।

मुगलों के साथ संघर्ष में गुरु गोविन्द सिंह ने अपने चारों पुत्रों फतेह सिंह, जोरावर सिंह, अजित सिंह और जुझार सिंह का बलिदान कर दिया। गुरु गोविन्द सिंह जी के बाद वीर बन्दा बैरागी ने एक सिक्ख राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया। उनका वास्तविक नाम लक्ष्मणदास था। बन्दा बैरागी के बाद खालसा दल का नेतृत्व जस्सा सिंह अहलूवालिया ने किया जिसे १२ मिसल में बाँटा गया था। सुकरचकिया मिसल के प्रमुख के रूप में राजा रणजीत सिंह ने सिक्खों को संगठित कर सिक्ख राज्य की स्थापना की और १७९८-९९ ईस्वी में लाहौर के शासक बने। राजा रणजीत सिंह के सेनानायक हरी सिंह नलवा ने सिख साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में अफगानिस्तान और पश्चिम में ईरान तक पहुँचा दी थीं। सिक्खों ने मुस्लिम शासन की समाप्ति में प्रमुख भूमिका निभाने के बाद अंग्रेजों को भी दो युद्धों में भारी टक्कर दी।

प्रेरक बालवीर

अशोक कुमार चौधरी - सहपाठी का जीवन बचाया

१७ जनवरी २००२ का दिन गुरुवार, स्थान था उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ। सभी कक्षाओं में नियमित ढंग से शिक्षण कार्य हो रहा था। कक्षा समाप्त हुई तो आचार्य अपनी कक्षाओं से बाहर आने लगे। उसके साथ ही कुछ शोर-गुल होने लगा। इसी समय एक छात्र अंकित कुमार साहू विद्यालय के दूसरे तल पर खड़ा था। विद्यालय भवन सड़क के किनारे था। बिजली के तार विद्यालय भवन के समीप ही थे।

अंकित ने पता नहीं कैसे, क्या किया? वह बिजली के तार को छू गया और तार से चिपक गया। मैदान में खड़े बच्चों ने देखा तो शोर मचाना प्रारम्भ किया। जरा सी देर में छात्रों व अध्यापकों की भीड़ लग गयी। सामने बिजली से चिपका हुआ अंकित था और सामने तमाशा देखती हुई भीड़।

अचानक एक छात्र साहस करके आगे बढ़ा और उसने अंकित के पैरों को पकड़कर उसे खींच लेना चाहा किन्तु वह असफल रहा क्योंकि छत भीगी हुई थी। अशोक ने सूखी दीवार का सहारा लेकर जोर लगाकर अंकित को धक्का दिया जिससे वह और अंकित दोनों ही तार से छिटककर दूर जा गिरे।

करंट के प्रभाव से दोनों की, विशेषकर अंकित की हालत गम्भीर थी। समय से उपचार होने से दोनों स्वस्थ हो गये। अशोक की हिम्मत और साहस से अंकित की जान बचाने की इस बहादुरी के कारण उसका नाम वीरता पुरस्कार के लिए प्रस्तावित किया गया। २००३ के गणतन्त्र दिवस समारोह से पूर्व देश के प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी द्वारा अशोक कुमार चौधरी को राष्ट्रीय बाल वीरता पुरस्कार प्रदान किया गया।

शांति घोष-सुनीति चौधरी

आपने विद्यालय के प्रधानाचार्य से उनके कक्ष में विद्यार्थियों को बुलाकर बात करने का दृश्य देखा ही होगा लेकिन मैं जिस घटना से आपका परिचय करवा रहा हूँ वहाँ प्रधानाचार्य और छात्रों के बीच की बातचीत का विषय चौंका सकता है। बच्चे भी कितना खतरा उठाकर बड़े से बड़ा काम कर सकते हैं, यह भी इससे सीखने को मिलेगा।

त्रिपुरा के जिला मुख्यालय कोमिल्ला का वह एक बालिका विद्यालय था, नाम था फैजुन्निसा गर्ल्स हाईस्कूल प्रधानाचार्या कल्याणी देवी विद्यालय की आठवीं कक्षा की दो छात्राओं से बात कर रही हैं। एक है शांति घोष और दूसरी सुनीति चौधरी। उम्र है चौदह-साढ़े चौदह वर्ष। चर्चा का विषय न पढ़ाई है न विद्यालय का कोई आयोजन बल्कि वे चर्चा

कर रही हैं जिला मजिस्ट्रेट स्टीवेंस के सीमातीत अत्याचारों की। सायं सात बजे के बाद घर से न निकलना, सोलह वर्ष से बड़े नागरिकों को बिना परिचय पत्र न निकलना। चप्पा-चप्पा पुलिस की निगरानी में, विद्यालय पर भी पुलिस का पहरा।

जन-जीवन पूरी तरह असामान्य व त्रास भरा था। स्वतन्त्रता के प्रयत्नों को अपने प्रति विद्रोह बता कर अंग्रेज शासक सामान्य भारतीयों को ऐसे ही भयाक्रान्त किया करते थे। इस आतंक से मुक्ति का एक उपाय था, दुष्ट स्टीवेंस को यमलोक पहुँचा देना। अत्याचारी बाहर से कितना भी भयभीत करने वाला दिखे, अन्दर से वह स्वयं बहुत डरा हुआ रहता है। स्टीवेंस का भी यही हाल था। उसका बँगला चारों ओर लोहे के कँटीले तारों की दोहरी बाड़ से घिरा हुआ था। हर पल सशस्त्र पहरेदार उसकी रक्षा में तैनात रहते। वह घर से ही कार्यालय चलाता। बाहर बहुत कम ही जाता था और बंगले पर उससे भेंट भी कड़ी जाँच-पड़ताल के बाद ही हो पाती थी। उसे मारने का बीड़ा कई क्रांतिकारी उठा चुके थे। सरकार को इस आशय की धमकियाँ भी मिलती रहतीं पर सफलता अभी तक न मिली थीं।

"जहाँ काम आवे सुई कहा करे तरवारि" की सूक्ति आज एक नए अर्थ में चरितार्थ हो रही थी। शांति और सुनीति ने इस काम की जिम्मेदारी ली। उनकी प्रधानाचार्या कल्याणी देवी के पिता श्री वेणीमाधव दास जी सुभाष चन्द्र बोस के गुरु रहे थे और छोटी बहिन वीणा दास बंगाल के गवर्नर स्टेनली जैक्सन को मृत्यु के सुपुर्द कर १३ वर्ष का कारावास काट रही थी। 'जैसे गुरु वैसे ही चेले', कल्याणी देवी अपनी छात्राओं में स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूट कर भरती रहती थीं।

सन् १९३१ के १४ दिसम्बर की ठण्डी सुबह थी। विद्यालय वेश में इन दोनों छात्राओं ने पहरेदार को बताया हमें जिला मजिस्ट्रेट साहब से मिलना है। "किसलिए मिलना है?" संतरी ने पूछा।

''हमारे विद्यालय में तीन मील तैराकी की स्पर्धा का आयोजन है। हमें उस दिन नदी में स्टीमर, मोटरबोट, नावों के आने-जाने पर रोक लगाने के लिए निवेदन करना है।'' कहते हुए शांति ने एक प्रार्थना-पत्र निकालकर दिखाया। छोटी बच्चियों और उनके काम को देखकर उन्हें अन्दर जाने की अनुमति मिल गई। बच्चियाँ हैं, सोचकर कोई खास तलाशी भी न हुई और वे स्टीवेंस के कार्यालय के प्रतीक्षा कक्ष में जा पहुँचीं। उन्होंने पर्ची पर नाम लिखे इला सेन और मीरा देवी और अन्दर भिजवा दिया। अन्दर से बुलावा आया तो जाकर आवेदन प्रस्तुत कर दिया। स्टीवेंस ने पढ़ा। हल्के से मुस्कुराया और बोला "इसे प्रधानाचार्य से पहले अग्रेषित तो करवाओ फिर हमें देना।"

"जी सर!" कहते-कहते शांति ने खुजली के बहाने बगल में दबी पिस्तौल निकाल ली। स्टीवेंस तो आवेदन पर प्रधानाचार्य अपना अभिमत दें, लिखने हेतु झुका हुआ था पर उन दोनों को तो अभिमत कुछ और ही मिला हुआ था। सुनीति ने भी पिस्तौल निकाली और स्टीवेंस पर अचूक निशाना लगा दिया। वह लुढ़क पड़ा। गिरफ्तारी हुई। अवयस्क होने से मौत की सजा आजीवन कारावास में बदल दी गई। वे अंधेरी काल कोठरी में समा गईं पर देश में अपना नाम कर गई।

सोचिए – क्या आप अपने गाँव, नगर, जिले के किसी ऐसे वीर, साहसी बालक या बालिका के बारे में जानते हैं जिसने छोटी उम्र में ही कोई बड़ा काम कर दिखाया हो?

वन्देमातरम्

ऋग्वेद के 'बन्धुर्मेमाता पृथिवी महीयम्', यजुर्वेद के 'नवो मातरे पृथिव्यै', अथर्ववेद के 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अन्यत्र भी पृथ्वी को माता कहकर वन्दना करने के अनेक श्लोक हैं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से तो प्रायः सभी परिचित हैं। जन्मभूमि की मातृरूप में वन्दना करने की भारतीय परम्परा रही है। उसे ही बंकिमचन्द्र ने वन्दे मातरम् गान में गाया है।

हम सब पार्थ हैं

'वन्देमातरम्' गीत की अपनी एक विशेषता है। उसमें मातृभूमि को माँ के रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति में यह विचार बहुत ही प्राचीन है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' इसलिए हर भारतीय पार्थ है। महाभारत में अर्जुन के अनेक नाम हैं, उन्हीं में से एक नाम है पार्थ, अर्थात् पृथा का पुत्र। अर्जुन स्वयं को पार्थ कहलाना गौरवास्पद मानता है वह भले ही उसका विशेष नाम है, परन्तु प्रत्येक भारतीय पृथ्वी का पुत्र होने से पृथ्वी-पुत्र है। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना को अभिव्यक्ति दी, मातृभूमि को अपनी श्रद्धा-भक्ति का प्रतीक, माता के रूप में देखने का भाव जगाया। विजिगीषु वृत्ति जगाते हुए उसे शक्तिशालिनी दुर्गा अर्थात् अजेय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मबन्धुबन्दोपाध्याय और योगी अरविन्द आदि के कारण 'वन्देमातरम्' पूरे देश में गूँजने लगा।

लाल बाजार में चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की अदालत में २६ अगस्त, १९०७ को सुनवाई चल रही थी, अभियुक्त थे विपिनचन्द्र पाल। हजारों युवा 'वन्देमातरम्' समाचारपत्र के प्रति अपना समर्थन दे रहे थे। जैसे ही विपिनचन्द्र पाल को लाया गया त्यों ही 'वन्देमातरम्' की गूँज से वातावरण गुंजायमान हो गया। परिस्थिति अनियन्त्रित थी। पुलिस ने लाठी चार्ज किया। १५ वर्षीय सुशील कुमार ने अभिमन्यु की तरह वीरता दिखाते हुए पुलिस दरोगा को जमीन पर गिरा दिया। उसे किंग्सफोर्ड ने १५ बेंतों की सजा सुनाई। पशु बलि की तरह सजा की तैयारी की गई। सुशील कुमार ने निश्चय किया - "मेरी माँ बहुबल धारिणी है। वह अतुलित बलशालिनी है और उसका पुत्र होने के कारण मैं भी बलशाली हूँ। मेरे मुँह से चीख निकलेगी तो मेरी माँ को लज्जित होना पड़ेगा। अतः मैं चीखूँगा नहीं।" बेंत उसके शरीर पर पड़ते रहे, वह 'वन्देमातरम्' बोलता रहा। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने उसके लिए स्वर्णपदक भेजा। कलकत्ता में स्वर गूँज रहे थे-

जाय जावे जीवन चले जगत माझे तोमार काजे- 'वन्देमातरम्' बले
बेंत मेरे किया भोलाबी आमरा कि मायेर कोई छेले।

''हे माँ! 'वन्देमातरम्' कहते हुए तुम्हारे लिए जीवन का अन्त हो गया तो भी चिन्ता नहीं। हे अंग्रेजों! आपको क्या लगता है कि बेंतों के कारण हम अपनी मातृभू को भुला सकेंगे? हम हमारी माँ के कायर पुत्र नहीं हैं।'' ऐसे थे 'वन्देमातरम्' के दीवाने भारत माँ के वीर सपूत।

'वन्देमातरम्' बँकिम चन्द्र जी की साहित्य-लता पर खिला हुआ सुन्दरतम पुष्प है। बँकिम चन्द्र जी का सम्पूर्ण सौन्दर्य, सौरभ तथा सुधा की माधुरी इस काव्य में एकत्र हुई है।

'माँ', इस संकल्पना में क्या नहीं समाया है? इसमें आकाश की विशालता है, धरती की क्षमाशीलता, स्वर्गलोक के अमृत की मधुरता है, गंगा मैया की शुचिता है, गतिमानता है और निष्काम कर्म का सौरभ है।

वीरों के बलिदान की हुंकार वन्दे मातरम्।
राष्ट्र भक्ति प्रेरणा का गान वन्दे मातरम्॥

८. हमारी संस्कृति का विश्व संचार

यदि विश्व में कोई ऐसा देश है, जहाँ विश्व की प्रथम सभ्यता पैदा हुई, जिसको हम मूल सभ्यता का नाम दे सकते हैं और जिसने विकसित होने के बाद प्राचीन विश्व के सभी भागों में अपना विस्तार किया तथा अपने ज्ञान द्वारा विश्व के मनुष्यों को महान जीवन प्रदान किया, तो वह निस्सन्देह भारत है। – क्रूजर

विश्व के रंगमंच पर समय-समय पर अनेकानेक संस्कृतियाँ जन्मीं और विकसित हुईं। किन्तु कालान्तर में अनेक विस्मृति के कराल गाल में समाहित होकर तिरोहित हो गईं। अन्य देशों के रहने वालों की क्या, स्वयं इन देशों के निवासी भी अपनी-अपनी संस्कृति की प्राचीन विशिष्टताओं, श्रेष्ठताओं और मान्यताओं के गौरव-गान को उनके स्मृति के कोश में नहीं रख सके। भारतीय संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है जो सबसे प्राचीन होते हुए भी उसी रूप और परिवेश में चलती आ रही है। भारतवासी आज भी अपनी उन्हीं प्राचीन जड़ों से सिंचित होकर पल्लवित और पुष्पित होते हुए अपनी संस्कृति का प्राचीन गौरव और महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रखने में समर्थ हैं।

भारतमाता के अमर पुत्रों ने अपने जीवन को खपाते हुए विश्व में अपनी संस्कृति का प्रसार किया। विश्वबन्धुत्व से सबको परिचित कराया। भौगोलिक सीमाओं की दृष्टि से वे देश भारत का अंग नहीं किन्तु सांस्कृतिक धरोहर के पदचिह्न आज भी जहाँ दिखाई देते हैं, ऐसे कुछ देशों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है –

थाईलैंड – दक्षिण-पूर्व एशिया का यह देश उसी भूखण्ड का मार्ग है जिसे पूर्वकाल में स्वयंभूमि कहा जाता था। "थाई" जाति लोगों की बहुलता के कारण आजकल इस देश का नाम थाईलैंड हो गया है। पूर्व में इसका नाम बार-बार बदला गया, यथा- द्वारावती, स्याम, श्याम/सियाम, स्यामरूते। श्रीकृष्ण के नाम पर श्याम, द्वारका के नाम पर द्वारावती। थाई का अर्थ 'स्वतन्त्र' होता है। यह नाम वहाँ के निवासियों ने १२वीं शताब्दी में चुना जब वे कम्बोडिया से स्वतन्त्र हुए। भारत से सम्बन्धों की प्रगाढ़ता, व्यापकता और प्राचीनता यहाँ के रहने वालों के नामों, उनके धार्मिक विचारों, कला और साहित्य आदि की समानताओं से व्यक्त होती है। श्याम देश (थाईलैंड) की भाषा एवं लिपि पर संस्कृत का प्रभाव है। श्याम देश का राष्ट्रीय ग्रंथ रामायण है।

जावा – इस द्वीप के मूल निवासियों के सम्बन्ध में इतिहासकार एल्फिन्स्टन का कहना है कि वे भारत के सूर्यवंशी क्षत्रियों के वंशज हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ 'हिन्दुस्तान का इतिहास' के पृष्ठ १६८ पर लिखा है कि इस द्वीप के सन्दर्भ में उपलब्ध ग्रन्थों तथा यहाँ स्थित मन्दिरों में निर्मित भित्तिचित्रों में पुराण कथाओं को सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ अभी भी ईस्वी पूर्व ७८ में प्रारम्भ शक् संवत् चलता है। शक् संवत्सर के प्रयोग के आधार पर माना जा सकता है कि ईस्वी २५५ पूर्व ही नहीं बाद की शताब्दियों में भी समय-समय पर भारत के लोग यहाँ और यहाँ के लोग भारत में आते-जाते रहे हैं। तभी तो उनके द्वारा भारत की नवीनतम बातें यहाँ और यहाँ की बातें भारत में पहुँचती रही हैं।

आज भले ही इस द्वीप को जावा पुकारा जाने लगा है, किन्तु इसका प्राचीन नाम 'यव' (यवद्वीप) है। इसकी आकृति यव (जौ) की तरह होने के कारण वहाँ गये भारतीयों द्वारा इसका नाम यवद्वीप दिया गया। जावा (यवद्वीप) की प्रम्बनन घाटी में १५६ मन्दिरों का एक समूह है जो लारा जोग्राम के नाम से पहचाना जाता है।

जावा में पाषाण पर उत्कीर्ण महाकाव्य – यहाँ स्थित शिवालय की लम्बाई ९० फीट है। १० फीट ऊँचा चबूतरा और सात फीट चौड़ा परिक्रमा मार्ग है। गर्भगृह में महेश्वर के साथ आदिशक्ति दुर्गा माँ का भी दर्शन होता है। परिक्रमा-पथ में अनुपम शिल्प है। प्रभु श्रीरामचन्द्र के वनवास के चौदह वर्षों का कथा भाग सबके अन्त:करण को स्पर्श

करने वाला है। सीता-हरण के प्रसंग का चित्रण देखने पर लगता है मानो साक्षात् यह घटना सामने घट रही है। सम्पूर्ण रामायण उत्कीर्ण है शिलाओं पर। अनेक स्थानों पर कलाकारों के कौशल की पराकाष्ठा हुई है। निर्जीव पाषाण के चित्र सचेतन लगते हैं। यह सांस्कृतिक दृश्य भारतीय संस्कृति का प्रदर्शन है। जावा में महर्षि अगस्त्य उनके महापुरुष हैं। ''अगस्त्य पर्व'' नामक एक ग्रन्थ है।

१६वीं सदी के मध्य तक यह हिन्दू राज्य बना रहा। दुर्भाग्य से बाद के काल में कर्तृत्ववान राजा नहीं हुए। तदन्तर अरबों के आक्रमण हुए। उनके पीछे-पीछे पुर्तगाली, स्पेनिश, डच, ब्रिटिश आदि व्यापारी और नौसैनिक सत्ताएँ इस प्रतियोगिता में उतर आयीं। इन आक्रमणों का सामना हिन्दू राजा नहीं कर सके। सैकड़ों वर्षों तक भारत-भूमि के पुत्र आते रहे, जावा सुरक्षित रहा। दसवीं सदी के बाद स्वयं भारत धर्म, संस्कृति, भूमि, समाज आदि पर इस्लाम के आक्रमणों का प्रतिकार करने में संघर्षशील रहा।

विश्व को भारत का उपहार 'शून्य' का आविष्कार

शून्य की खोज के प्रमाण सर्वप्रथम भारत में ज्योतिषकाल में रचित ग्रन्थ वेदांग ज्योतिष में ईसा से १४०० वर्ष पूर्व में मिले। विश्व परिदृश्य की बात की जाए तो वेदांग ज्योतिष में वर्णित ग्रहों-नक्षत्रों की स्थिति एवं गतियों की विवेचना में शामिल शून्य मेसोपोटामिया (ईसा से तीसरी शताब्दी पूर्व) और भारत में साथ-साथ विकसित हुआ।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने भारत में प्राचीनकाल में प्रचलित वख्शाली पाण्डुलिपि में - कार्बन डेटिंग के माध्यम से शून्य के प्रयोग की तिथि को निर्धारित किया है, जिसकी निष्कर्ष है कि भारत में शून्य का गणना में प्रामाणिक उपयोग ईस्वी सन ४०० में आरम्भ हुआ।

भारतीय दर्शन में शून्य और शून्यवाद का बहुत महत्त्व है। पाश्चात्य विद्वानों का प्रारम्भिक मत था कि पूर्व के देश व भारत के लोगों को शून्य के प्रयोग की जानकारी नहीं थी। किन्तु सच्चाई यह है कि न केवल अंकों के बारे में विश्व भारत का ऋणी है, बल्कि अंकों के अलावा भारत ने शून्य की खोज की। आर्यभट्ट (जीवन काल ४८६-५५० ईस्वी) ने गणित के कई सिद्धान्त विकसित किए। शून्य की पहचान, निर्णय सूत्र एवं आर्यभट्टीय गुणोत्तर वृद्धि इनकी रचनाएँ हैं जिनका समग्र वर्णन इनके ग्रन्थ 'आर्यभट्टीय' में मिलता है। आर्यभट्ट ने कॉपरनिकस व आर्कीमिडीज से बहुत पहले पृथ्वी की गति व स्थिति की विवेचना की।

६२८ ईस्वी में भारतीय विद्वान गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित पुस्तक 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' में शून्य की सैद्धान्तिक विवेचना प्रामाणिक तथ्य के साथ की गई है। इस प्रकार शून्य के वास्तविक प्रयोगकर्ता ब्रह्मगुप्त हैं।

प्राचीन खगोल विज्ञान की देन

प्रकाश की गति - ''क्या हमारे पूर्वजों को प्रकाश की गति का ज्ञान था?'' यह प्रश्न एक बार गुजरात के राज्यपाल रहे श्री के.के.शाह ने मैसूर विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्राध्यापक प्रो.एल.शिवय्या से पूछा। श्री शिवय्या संस्कृत और विज्ञान दोनों के जानकार थे। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, ''हाँ, जानते थे।'' और प्रमाण के रूप में उन्होंने ऋग्वेद की एक ऋचा का उल्लेख किया- **''मनो न योऽध्वनः सद्यएत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे''** अर्थात् मन की तरह शीघ्रगामी सूर्य स्वर्गिक पथ पर अकेले जाते हैं। इस ऋचा के भाष्य में सायणाचार्य शीघ्रगमन का वर्णन करते हुए एक श्लोक लिखते हैं जिसमें प्रकाश की गति का वर्णन है -

योजनानां सहस्त्रे द्वै द्वैशते द्वै च योजने ।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् आधे निमिष में २२०२ योजन का मार्गक्रमण करने वाले प्रकाश पुंज, तुम्हें नमस्कार है।

आधुनिक विज्ञान की मान्य प्रकाश गति के यह अत्यधिक निकट है। वस्तुतः सम्पूर्ण विश्व खगोलीय ज्ञान के क्षेत्र में भारत का ऋणी है।

भारत की विश्व को देन

वैदिक गणित

विज्ञान, गणित और जीवन के अन्य क्षेत्रों में लगभग पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हम अपने देश को पश्चिम की तुलना में पिछड़ा हुआ मानते हैं जबकि वैदिक ज्ञान की परम्परा में हम उनसे बहुत आगे हैं। वैदिक ज्ञान की ऐसी ही एक शाखा वैदिक गणित है जिसको पुनर्जीवित करने का श्रेय गोवर्धनपीठ, पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थ को है। प्रश्न चाहे अंकगणित का हो या बीजगणित का या फिर ज्यामिति, त्रिकोणमिति या अवकलन का, वैदिक गणित के ये सूत्र उन्हें प्रचलित विधियों की अपेक्षा तीन-चार गुनी शीघ्रता से हल करने की क्षमता प्रदान करते हैं। श्री शंकराचार्य ने दावा किया है कि वैदिक सूत्र तथा उनके अनुप्रयोग में ऐसे गुण इतनी विशेष मात्रा में हैं कि उन पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण विश्व के लिए इन सूत्रों की गणित के क्षेत्र में अनुपम देन है।

संगीत की भारतीय परम्परा

इससे पूर्व हमने स्वर व तालवाद्यों के भेद जाने। अब ताल आदि के विषय में सामान्य ज्ञान अर्जित करें।

ताल में विलम्बित (सामान्य से कम गति), मध्य (सामान्य गति) और द्रुत (सामान्य से अधिक गति), लय के आधार पर तीन प्रमुख भेद होते हैं। जिनमें विलम्बित का एक उपभेद अतिविलम्बित और द्रुत में दुगुन (दोगुनी), चौगुन (चार गुनी) तथा डेढ़ी, सवाई, पौनी आदि उप भेद भी हैं।

ताल के समय मापने के निश्चित अन्तर को 'मात्रा' कहते हैं। अलग-अलग तालों में मात्राओं की अलग-अलग संख्या रहती है, जैसे- त्रिताल में १६, एकताल और चौताल में १२-१२, झपताल में १०, कहरवा में ८, दादरा में ६ आदि। ताल का आरम्भ होने की मात्रा 'सम' कहलाती है। सम एक प्रकार से ताल का मुख होता है। जहाँ एक विभाग आरम्भ होता है उसे 'ताली' और जहाँ तालवाद्य के एक ही भाग को बजाया जाता है वह 'खाली' कहलाता है। ताली अंक लिखकर और खाली शून्य लिखकर दर्शाई जाती है। भारत में विभिन्न छन्दों में लिखे गीतों को स्वरबद्ध करने हेतु अनेक तालों की रचना हुई। एक ही गीत, या स्वर रचना हेतु एक से अधिक ताल भी प्रयोग की जाती हैं। सरस्वती वन्दना (प्रार्थना) 'हे हंसवाहिनी, तीन ताल में (त्रिताल) में है जिसमें चार विभाग व १६ मात्राएँ, तीन ताली एक खाली होती है एवं मध्य लय का प्रयोग किया जाता है।

वाद्यवादकों की भारतीय परम्परा डमरूधर भगवान शिव, वीणावादिनी माँ सरस्वती और देवर्षि नारद, मुरलीधर श्रीकृष्ण आदि से होती हुई आधुनिक युग में श्री पन्नालाल घोष व पण्डित हरिप्रसाद चौरसिया (बांसुरी), पण्डित रविशंकर (सितार), पण्डित लालमणि मिश्र व पण्डित विश्वमोहन भट्ट (वीणा), पण्डित शिवप्रसाद (सन्तूर), ठाकुर लक्ष्मण सिंह (पखावज), पण्डित अनोखेलाल मिश्र, पण्डित कण्ठे महाराज और पण्डित किशन महाराज, पण्डित सामता प्रसाद आदि (तबला) वाद्यवादकों तक निरन्तर है। नवीन वाद्यों के आविष्कार और विदेशी वाद्यों का मिश्रण भी भारतीय संगीत में हो रहा है।

गायन के प्रमुख स्वरूप

१. **ध्रुपद** – इसकी व्युत्पत्ति ध्रुवपद शब्द से है। भारतीय संगीत परम्परा की यह सबसे प्राचीन गायन शैली है। यह प्राय: विलम्बित लय में स्वरों के रागबद्ध ठहराव के साथ मुख्यत: चौताल व एकताल में गाया जाता है।

२. **धमार** – मध्य विलम्बित लय में धमार नामक चौदह मात्रा की ताल के साथ प्रस्तुत होने वाली लोक से शास्त्र में आई गायन शैली है।

३. **खयाल** – खयाल गायकी इतिहास के मध्यकाल में विकसित गायन शैली है। यह प्राय: बड़ा और छोटा खयाल नाम से दो रूपों में प्रसिद्ध है। बड़ा खयाल विलम्बित और छोटा खयाल मध्य लय में विभिन्न प्रकार की तानों व आलापों के साथ अलग-अलग ताल में गाए जाते हैं।

ठुमरी, टप्पा, दादरा आदि भी अनेक प्रकार की गायन शैलियाँ हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक अद्‌भुत आयाम संगीत चिकित्साशास्त्र है। इस पर अभी तक अनेक अनुसन्धान हुए हैं लेकिन इसे और अधिक शोध करके विकसित करने की आवश्यकता है। संगीत, पशु-पक्षी, हिंसक पशुओं एवं पेड़ पौधों तक पर अत्यन्त सकारात्मक प्रभाव डालता है, तब मानव जीवन पर इसका प्रभाव तो सुनिश्चित ही है।

हम स्वयं संगीत सीखें। गायन, वादन, नृत्य सीखें, यह तो सर्वोत्तम है ही लेकिन न भी सीख सकें तो अच्छे कलाकारों के संगीत को सुनना सीखें। आजकल ईयरफोन लगाकर बहुत समय तक संगीत सुनते युवा वर्ग सर्वत्र दिख जाते हैं। वे यदि कौनसा गीत-संगीत कब सुनना, यह जान लें तो अपना जीवन अधिक आनन्दमय बना सकते हैं।

शिल्प शास्त्र

भारत में शिल्प शास्त्र का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है जिसमें नगर रचना, भवन, मन्दिर, मूर्तियाँ, चित्रकला आदि सब कुछ आता है। नगर में सड़कें, जलप्रदाय व्यवस्था, सार्वजनिक सुविधा हेतु स्नानगृह आदि, नालियों, भवनों का आकार-प्रकार, उनकी दिशा, माप, भूमि के प्रकार, निर्माण कार्य में काम आने वाली वस्तुओं की प्रकृति आदि का विस्तार से विचार किया गया है। महर्षि भृगु के अनुसार निर्माण उपयोगी प्रत्येक वस्तु का परीक्षण निम्न मापदण्डों पर करना चाहिए –

वस्तु का वर्ण (रंग), लिंग (गुण चिन्ह), आयुरोपण, प्राचीन काल से आज तक की अवस्था तथा इन सब के कारण वस्तु की क्षमता, उस पर जो खिंचाव पड़ेगा, उसे देखकर यथोचित रूप से सभी संस्कारों को करना चाहिए।

निर्माण के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन ऋषियों के शास्त्र हैं – १. विश्वकर्मा वास्तु शास्त्र, २. काश्यप ऋषि, ३. भृगु संहिता। इन शास्त्रों में शिल्प कला के अनेक रहस्यों को बताया गया है।

संस्कृति का रथ बढ़ता जाता, युगों-युगों से युगों-युगों तक।
सबको जीवन पंथ सुझाता, युगों-युगों से युगों-युगों तक॥
भारत माँ को विश्वगुरु का मान मिला इस रथ पर चढ़कर।
धर्म पताका को फहराता, युगों-युगों से युगों-युगों तक॥

निवेदन

प्रिय भैया-बहिनों से ...

यह पुस्तक तो आपने पूरी पढ़ ली। पुस्तक केवल पढ़ने और संभाल कर रख लेने के लिए तो नहीं होती आगे विचार करने के लिए यदि हमने उसमें से कुछ नहीं निकाला तो पुस्तक की उपयोगिता क्या हुई? इसलिए, कुछ बातें आपके सोचने एवं करने के लिए ...

यह तो छोटी-सी पुस्तक है। कितना भी बड़ा ग्रन्थ क्यों न हो, उसमें भी विषयवस्तु की सीमा तो रहती ही है। उस पर संस्कृति जैसा व्यापक विषय कुछ पृष्ठों की मर्यादा में कैसे समा सकता है? इसलिए सबसे पहले तो अपने ध्यान में यह आना चाहिए कि यह पुस्तक संस्कृति के कुछ प्रमुख अंगों का परिचय मात्र है, सम्पूर्ण संस्कृति बोध नहीं। कुछ जानकारियाँ एवं तथ्य आपके ध्यान में आ गए, अब उनके विस्तार में जाने का काम तो आपको ही करना है – स्वाध्याय द्वारा, चर्चा द्वारा, चिंतन द्वारा।

दो शब्द प्रयोग में आते हैं – सभ्यता और संस्कृति। प्राय: दोनों को पर्यायवाची समझा जाता है, जबकि दोनों में अनेक अन्तर हैं। सभ्यताएँ बदलती हैं, बनती-बिगड़ती हैं। संस्कृति का आधार स्थायी तथा शाश्वत होता है। सड़क बनाने की एक प्रक्रिया होती है – नाप-जोख की जाती है, निर्माण सामग्री आती है, सरकार या नगर पालिका धन देती है और अभियन्ताओं के मार्गदर्शन-निरीक्षण में श्रमिक सड़क बनाते हैं। इसके विपरीत गाँव में खेतों के बीच से होकर मन्दिर या तालाब तक जाने वाली पगडण्डी कोई बनाता नहीं, चलने वालों के पैरों से स्वयं बन जाती है। सभ्यता सड़क है, संस्कृति पगडण्डी जोकि उसका पालन करने वालों ने स्वयं बना ली है। इसमें सभ्यता का भी अंश होता है, किन्तु पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज-परम्पराओं, मान बिन्दुओं-श्रद्धा केन्द्रों के प्रति समान आस्था समाज को एकजुट करती है। गंगा उत्तर भारत में बहती है किन्तु सुदूर दक्षिण भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी जा बसे भारतीय मूल के समाज के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। संस्कृति का आधार भावात्मक एकात्मता है जो हमें एक-दूसरे से जोड़कर रखती है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविता 'आस्था' में लिखते हैं – "प्रखर बुद्धि से भले सभ्यता हो नव निर्मित, संस्कृति के निर्माण के लिए हृदय चाहिए।"

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो॰ किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं, "संस्कृति संस्कार से बनती है जबकि सभ्यता नागरिकता का रूप है।"

अत: अपने लिए विचार करने का दूसरा विषय है, क्या हम सभ्यता और संस्कृति को अलग-अलग ठीक प्रकार से समझते हैं।

आजकल मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों – नृत्य, नाट्य, गायन-वादन, अभिनय को 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' कहा जाता है। यदि उनमें अपने देश की संस्कृति की झलक नहीं है तो वे रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ मात्र हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम तो नहीं।

वीर सावरकर लिखते हैं, ''विश्व रचना परमात्मा द्वारा सम्पन्न हुई है। संस्कृति मानव प्रकृति द्वारा की गई उसकी अनुकृति मात्र है। संस्कृति का सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मानव पर मानव की आत्मा की पूर्ण-विजय प्राप्ति ही है।'' अर्थात् अपनी संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं को समझकर और उन्हें जीवन व्यवहार में लाकर हम एक प्रकार से परमात्मा के कार्य का अनुकरण ही कर रहे होते हैं।

देशभर के अनेक विद्वानों ने इस पुस्तक में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जो जानकारी संकलित कर हमारे हाथों में सौंपी है, वह केवल रट लेने और परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए नहीं है। हम इस सूत्र रूप में प्राप्त जानकारियों के आधार पर इस दिशा में और अधिक खोजें-जानें-समझें-समझायें, तभी इस श्रम की सफलता होगी। ज्ञानदायिनी माता सरस्वती हमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें, यही प्रार्थना।

– महामंत्री

भारतमाता मन्दिर हरिद्वार

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

दूरभाष : ०१७४४-२५१९०३, २७०५१५ मोबाइल/व्हाट्सएप्प : ९८१२५२०३०१

sgp@samskritisansthan.org www.samskritisansthan.com vidyabhartikurukshetra vidyabhartisss YouTube vbsss kkr

प्रकाशन वर्ष : विक्रम संवत् २०८१, युगाब्द ५१२६ (सन् 2024 ई०)